

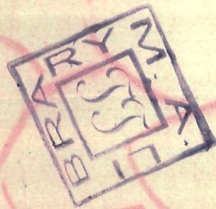
आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध-सार

THESIS SECTION

T 2619



निर्देशक :

डा० गिरधारीलाल शास्त्री

एम० ए०, पी०एच०डी०
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़ ।

शोधकर्त्री :

कुमारी माधुरी शर्मा

एम० ए० (हिन्दी, इतिहास, राजनीतिशास्त्र)
एम० एड० (साहित्यरत्न)
प्रवक्ता बी० एड० विभाग,
श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़ ।

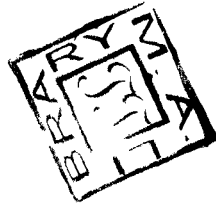
आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध-सार

THESIS SECTION

T 2619



निर्देशक :

डा० गिरधारीलाल शास्त्री

एम० ए०, पी-एच०डी०

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

शोधकर्त्री :

कुमारी माधुरी शर्मा

एम० ए० (हिन्दी, इतिहास, राजनीतिशास्त्र)

एम० एड० (साहित्यरत्न)

प्रवक्ता बी० एड० विभाग,

श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़ ।

शोध प्रबन्ध - सार =====

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में 'साधुनिक हिन्दी काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' का विषय माना गया है। मनोवैज्ञानिक मानदण्डों के आधार पर काव्यालोचना प्रस्तुत करना अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। कवि एक भौतिक प्राणी है वह संसार के समक्ष अपनी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों को शब्दाकार रूप में अभिव्यक्ति देता है। उसके काव्य का सम्बन्ध मन, विचार, भाव, संकल्प एवं प्रतिभा आदि मानसिक क्रियाओं से है। यदि कवि अपने विचारों, भावों आदि को शब्दाकार देता है तो दूसरी ओर मनोविज्ञान भी उस व्यक्ति के अन्तर्गत को चित्रित करता है जो एक जीवित प्राणी है तथा क्षण में परिवर्तित होने वाले संसार घटनाओं, मनुष्यों एवं वस्तुओं के साथ सादात्म्य स्थापित कर तदनुकूल व्यवहार करता है। अतः कवि तथा मनोविज्ञान का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। यदि काव्य में मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है तो मनोवैज्ञानिक उस अभिव्यक्त माध्यम द्वारा कवि की मानसिक क्रियाओं, गान्धित्यों, एवं व्यक्तित्व का जानकारी देने में सामर्थ्य प्रदान करता है। निःसंदेह काव्य के वस्तुपरक अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष अध्ययन महत्वपूर्ण है।

विषय की सीमा -

मनोवैज्ञानिक आलोचना -शैली में भाषा, अक्षर,

शब्द, शक्ति, तथादि को स्वतन्त्र रूप में ग्रहण नहीं किया जाता प्रत्युत मानसिक प्रक्रिया के मूर्त प्रतीक रूप एवं बिम्ब-रूप में ही स्वीकार किया जाता है। प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में इसी आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की अनेक शाखाओं को अग्रसरित किया है, परन्तु काव्य से सम्बन्धित किसी शाखा के नमोल्लेख का अभाव है। सर्वप्रथम कुछ पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि इस ओर गई और उन्होंने इस अभाव की पूर्ति के लिए "साहित्य मनोविज्ञान" की अवधारणा को प्रतिष्ठापित किया। इस दिशा में निरन्तर कार्य किया गया, परिणामस्वरूप काव्य का सम्बन्ध मनोविज्ञान की उस शाखा में निर्धारित किया गया जो काव्य में प्रतिमादित विचारों, धारणाओं, वर्णित भावों, मानसिक प्रवृत्तियों, व्यक्तित्व, स्वभाव और व्यवहार का अध्ययन प्रस्तुत कर सके।

काव्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए मुख्यतः तीन पद्धतियों - सामान्य, प्रयोगात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति को आधार रूप में स्वीकार किया जाता है। सामान्य पद्धति के अन्तर्गत साहित्यकार एवं उसकी कृति का मनोवैज्ञानिक ढंग से सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। आलोचक इस पद्धति द्वारा साहित्यकार की साहित्य रचना में प्रवृत्ति रचनाओं पर युगीन प्रभाव परिलक्षित करने में सफल हो जाता है। काव्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह पद्धति ही कार्य रूप में प्रयुक्त की जाती है। प्रयोगात्मक शैली में साहित्यकार अथवा कवि की विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न वाक्यांशों अथवा पद्यांशों के चयन

के आधार पर प्रश्नावली तैयार की जाती है। विश्लेषणात्मक पद्धति में फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा को आधार रूप में स्वीकार करके काव्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया जाता है। फ्रायड के मतानुसार कवि की क्रीडा में प्रवृत्ति काम-वासना के कारण होती है। परन्तु यह विचारधारा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। फ्रायड ने अवचेतन मन को सर्वाधिक महत्व दिया है। उसके अनुसार अवचेतन में पितामह काम वासन, दुंठाएँ आदि ही काव्य कला तथा स्वप्नों की सृष्टि करती हैं। ये दुंठाएँ प्रतीकात्मक शब्दावली में अभिव्यक्त होती हैं। कवि की प्रतीकात्मक शब्दावली का विश्लेषण कवि की मानसिक प्रवृत्ति, विचार तथा भाव आदि के ज्ञान में सहायक सिद्ध होता है।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में मनोविज्ञान की सामान्य एवं मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है। फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति तथा एडलर की अधिकार प्रवृत्ति का मैल्डुगल के सज्ज प्रवृत्ति - सिद्धान्त में समावेश हो जाता है, परन्तु फिर भी आवश्यकता पड़ने पर मनोविश्लेषण शैली को भी आनुपातिक स्थान दिया गया है।

शोध की मौलिकता -

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के इतिहासमें प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध प्रथम प्रयास है।

शोध - प्रबन्ध में भावपक्ष, कलापक्ष तथा व्यक्ति-त्व निरूपण की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक मानदण्डों द्वारा विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भाव-पक्ष में मनोवैज्ञानिक रागात्मक, विरागात्मक, लोभ-दैन्य आत्म-सात्त्विक, रजस, शृंगार आदि मनोभावों का स्थान निर्धारित किया गया है। कला - पक्ष की दृष्टि से चित्र - चिन्तन, प्रतीक - चिन्तन तथा शैली का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चित्र - चिन्तन में रूप चित्र, नाद चित्र, गन्ध चित्र, स्वाद चित्र, स्पर्श चित्र आदि साथ-साथ पैदा मन के स्मृति तथा कल्पना - चित्रों एवं अवधारण मन के स्वप्न चित्र, तन्द्रा चित्र, मिथ्या प्रत्यक्ष चित्र तथा आधुनिक चित्रों का आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में निर्धारण मौलिक प्रयास है। प्रतीकों की दृष्टि से भाव - मूलक तथा विचार मूलक प्रतीकों का विवेचन किया गया है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य शैली मनोविज्ञान के अत्यन्त निकट है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य की सम्यक विवेचना बिना मनोवैज्ञानिक मानदण्डों के असम्भाव्य है।

शोध की आवश्यकता -

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रतिपादित नवीन जीवन मूल्यों की समालोचना प्रस्तुत करने के लिए परम्परावादी मानदण्ड पर्याप्त नहीं है। आधुनिक कवि के काव्य को परम्परा-वादी सिद्धान्त से विवेचित नहीं किया जा सकता है। आधुनिक

हिन्दी कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व के समवेत अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक मापदण्ड ही उपयुक्त है। प्रत्येक कवि अपने परिवेश से सम्बद्ध मानसिक दृन्दों, संघर्षों, पूर्वानुभवों तथा मानवीय वास्तविकताओं को ही अपने काव्य में अभिव्यक्त करता है। काव्य में अभिव्यक्त मानसिक दृन्दों, संघर्षों आदि की विवेचना मनोविज्ञान के मापदण्डों से ही सम्भव है, क्योंकि मनोविज्ञान काव्य में अभिव्यक्त मनोभावों, संघर्षों आदि के लिए उपयुक्त मापदण्ड स्थापित करता है। अतः प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के अध्ययन में एक आवश्यकता की पूर्ति का प्रतिपादक होगा। सम्पूर्ण शोध - प्रबन्ध चार अध्यायों में विभक्त है।

भारतेन्दु युगीन कृष्ण काव्य -

भारतेन्दु युग के कृष्ण काव्य का मूल्यांकन मनो-वैज्ञानिक आधार पर ही किया जा सकता है। इस युग की कविता में अनुभूति की सत्यता की छाप मिलती है। इस काल के कवियों का जीवन से सीधा सम्पर्क था। विचारों की पुष्टता न होकर कविता में नवीनता पाई जाती है। इस काल के कवि अपने कर्तव्य के प्रति सचेत हैं। काव्य में तात्कालिक परिस्थितियों का निर्भक्ति के साथ चित्रण किया गया है। काव्य के विषय नायिका भेद, रस और अलंकार निरूपण के स्थान पर राज-भक्ति, देश-भक्ति और समाज सुधार तथा भाषा प्रेम सम्बन्धी हो गये। काव्य में सामाजिक रुढ़ियों और कुरीतियों का विरोध करते हुए

राष्ट्रीय भावना को स्थान दिया गया । काव्य परम्परा यद्यपि भक्ति काल और रीतिराज के आधार पर चलती रही किन्तु भारतेन्दु युग की चिन्ता में उर्दू के वेदनात्मक तत्त्व का समीक्षा हुआ । चिन्तों का ध्यान प्रकृति के आलम्बन रूप की ओर गया । चिन्ता जन जीवन के समीप आकर व्यापक की भूमि पर उड़ी ली गई । साहित्य और चित्रण से परिपूर्ण रचनाएँ हुई । काव्य में कृष्ण और शिव की भावना की उपस्थिति की गई । इस युग के दृष्ट-काव्य में साहित्य का दृष्ट कर भी हुई थी । भारतेन्दु के समय लोक गीतों का भी प्रचार हुआ । भारतेन्दु युगीन कृष्ण काव्य प्राचीन और नवीन के मध्य एक झुकाव बन कर उपस्थित हुआ है, नवीन विचारों एवं चिन्तों का समावेश भी किया गया है ।

द्वितीय युगीन कृष्ण - काव्य -

इस युग में श्रमिक भावनाओं का स्थान इतिवृत्तात्मकता ने ले लिया । गद्य और पद्य दोनों में उड़ी बोली का आधिपत्य हो गया । संस्कृत के कितने ही छन्दों का प्रयोग हुआ तथा नवीन छन्दों का भी विकास हुआ । कल्पना और भावुकता को पर्याप्त आश्रय नहीं मिला । राष्ट्रीयता और देश प्रेम से कृष्ण काव्य का उत्थान हुआ । भारत के अतीत गौरव की ओर लोगों का ध्यान निरन्तर रूप से आकर्षित हुआ । सामाजिक विषयों से प्रभावित होकर कृष्ण काव्य का निर्माण हुआ । काव्य यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुआ । इस युग में

कृष्ण काव्य का आदर्श जन जीवन हो गया उसमें जाग्रत और जनवाणी की भावना अंकित हुई ।

द्वितीय युगीन कृष्ण काव्य में हरिऔध जी का "प्रिय - प्रवास" उल्लेखनीय है । इस ग्रन्थ में कृष्ण की मथुरा यात्रा का वर्णन दिया गया है । गोपिकाओं के प्रिय कृष्ण मथुरा प्रवास करने चले गये हैं । इसलिए इस ग्रन्थ का नाम "प्रिय - प्रवास " रखा गया है । इस यात्रा के प्रसंग में हरिऔध जी ने कृष्ण की विभिन्न ब्रज लीलाओं का भी प्रियप्रवास में सम्मिलित दिया है । संस्कृत वर्ण वृत्तों में लिखा गया यह ग्रन्थ हिन्दी कृष्ण काव्य की स्थायी सम्पत्ति है । इसमें शृंगार और वात्सल्य इन दो रसों का अत्यधिक मार्मिक और मनो-वैज्ञानिक वर्णन प्राप्त होता है ।

"छापर" गुप्ता जी के द्वारा आत्मोद्गार प्रणाली के रूप में लिखा गया कृष्ण - काव्य है । छापर का प्रत्येक पात्र आत्मोद्गार के रूप में अपने विचार प्रकट करता है । छापर के कथानकों में कोई क्रम नहीं है । वे एक शृंखला में नहीं बंधे हैं । छापर के सभी पात्र स्वतन्त्र रूप से अपनी विचारधारा को आत्मोद्गार के रूप में प्रकट करते हैं । प्रत्येक पात्र किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण से सम्बन्ध रखता है । वही उनके केन्द्र है । छापर आत्मोद्गार प्रणाली में लिखा गया गीत काव्य है । छापर में पात्रों की विचारधारा को उन्हीं के मुख से प्रकट कराया गया है । इस प्रकार स्वगत कथन ही छापर की मुख्य विशेषता है, प्रत्येक पात्र अपनी मनोदशा का वर्णन करता

है। व्यापक मनोवैज्ञानिक कृष्ण काव्य है, जिसका सफल अध्ययन मनोवैज्ञानिक आधार पर ही सम्भव है।

राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरणा गुप्त जी की प्रारम्भिक रचनाओं में "जयद्रथ - वध" का प्रमुख स्थान है। महाभारत में अभिमन्यु का कुरुव्यूह में वध हो जाने के उपरान्त अर्जुन द्वारा सूर्यास्त जयद्रथ का वध किये जाने की प्रतिज्ञा का उल्लेख आता है। जयद्रथ - वध की कथावस्तु पत्नी घटना पर आधारित है। यह आठ सर्गों में विभाजित है। कथाक्रम मुख्यतया अर्जुन, सुभद्रा, अभिमन्यु और श्रीकृष्ण के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर चलता है। अर्जुन पुत्र प्रेमी और सुभद्रा आदर्श पत्नी तथा माता के रूप में दिखाई गई है।

रत्नाकर जी का उदव - शतक तर्जोत्कृष्ट रचना है। हिन्दी कृष्ण काव्य का यह एक अनुपम ग्रन्थ है। रत्नाकर जी रीतिकालीन परम्परा के कवि थे किन्तु उदव - शतक के पश्चात् वे भक्ति कालीन कवियों की कोटि में आ गये। उदव-शतक में दोनों परम्पराओं का सुन्दर सम्मिश्रण है। उदव-शतक के रूप में रत्नाकर जी ने हिन्दी कृष्ण काव्य को 118 अनुपम रत्नों का भण्डार प्रदान किया है। रत्नाकर जी ने प्राचीन विषय को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है, रत्नाकर जी के प्रत्येक कवित्त में पवित्र प्रेम भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है। भावों की मार्मिक व्यंजना, मनोवैज्ञानिक चित्रण दर्शनीय है। गोपियों को आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है। उदव-शतक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उदव कोटि का कृष्ण काव्य है, जिसमें मनोभावों का सजीव चित्रण किया गया है।

छायावाद तथा छायावादोत्तर कृष्ण - काव्य का स्वरूप -

एरा युग में कृष्ण काव्य जन - जीवन के अधिक समीप है। इसमें जागरण और जन - वाणी की भावना अधिक है। गांधी जी के अहिंसावाद ने जन - जीवन को नवीन जीवन दर्शन दिया। राष्ट्रीय भावनाओं के पोलक काव्य का निर्माण करना प्रारम्भ किया गया। इस युग के काव्य में दुःखवाद और निराशा दोनों ही पाये जाते हैं। मानव को सुन्दरतम माना गया है। मानव के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान की गई है। समाज का निर्माण व्यक्ति के लिए होता है। मानव हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। प्रकृति को आलम्बन के रूप में चित्रित किया गया है, उसका मानवीकरण करके सप्राणा और समवेदनशील माना गया है। छायावादी कवि प्रकृति के साथ अपना आत्मिक सम्बन्ध मानता है। आध्यात्मिकता भारतीय और यूरोपीय दोनों प्रकार की है। भक्ति भाव, रहस्यवाद और अद्वैतवाद सभी की शक्ति विद्यमान है। बन्धनों के प्रति असन्तोष और स्वच्छन्दता के पक्षपाती है। छायावादी कृष्ण काव्य का अध्ययन मनो-वैज्ञानिक आधार पर संभव है।

रामशारी सिंह "दिनकर" की "रश्मि रथी" कर्ण के चरित्र को आधार बना कर लिखा गया एक उच्छ्वोदित का कृष्ण काव्य है। यह उदात्त और आदर्श भावनाओं का काव्य है। वे उदात्त और आदर्श भावनाएँ कर्ण के चरित्र द्वारा ही उद्घाटित होती हैं, क्योंकि वह सारे अमान

और फलक सज्जन करते भी अन्त में जीवन की नैतिक कसौटी पर गिरा उतरता है। उसका शील, निस्वार्थता, अटल मैत्री भाव, जन साधारण के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा उसे एक महामानव की छोटि तक उठा देते हैं। कृष्ण एक प्रति नायक के रूप में चित्रित किये गये हैं, उनका चरित्र एक कूट-नीतिज्ञ के रूप में चित्रित हुआ है। वे एक उदास अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हैं। दुस्ती के चरित्र में कवि ने मातृत्व के भीषण अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि की है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण काव्य ही मनोभाषों के अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका अध्ययन भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। धर्मवीर भारती की कृपिथा भी उल्लेखनीय कृष्ण काव्य है।

प्राधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्व - भावपक्ष

सहज प्रवृत्तियाँ मानव में जन्मजात और स्वाभाविक होती हैं। आधु के साथ इनका विकास भी उत्तरोत्तर होता जाता है। वातावरण इनके विकास में जालम्बन का कार्य करता है। ये सहज प्रवृत्तियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। सहज प्रवृत्ति और भावों का घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक भाव के मूल में तत्सम्बन्धी सहज प्रवृत्ति सम्मिलित होती हैं। समस्त भावात्मक प्रवृत्तियों के मूल में विकसित होती है। मनोभाव भावात्मक आवेगों की एक संगठित प्रक्रिया है। मनोभाव जन्मजात न होकर अर्जित की प्रक्रिया है।

मनोभाव के मूल में सहज प्रवृत्तियाँ और भावों का वही स्थान होता है जो चीज में अंकुर का ।

आधुनिक हिन्दी - कृष्ण - काव्य में मनोभावों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । शान्त भाव के अन्तर्गत कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करते हैं । दास्य भाव में स्वयं को कवि दास के रूप में अभिव्यक्त करते हैं । सख्य भाव में ग्वाल वाल श्रीकृष्ण के प्रति अपना सख्य भाव का प्रदर्शन करते हैं । वात्सल्य भाव का कृष्ण काव्य में व्यापक रूप से वर्णन किया गया है । कृष्ण के प्रति यशोदा, देवकी और नन्द के द्वारा वात्सल्य भाव को अभिव्यक्त किया गया है । माधुर्य भाव के अन्तर्गत शृंगार भाव सम्मिलित है । हिन्दी कृष्ण काव्य में यह दो प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है - संयोग शृंगार में राधा - कृष्ण और गोपियों के संयोग शृंगार का वर्णन प्राप्त होता है । विप्रसम्भ शृंगार में वियोगावस्था का उल्लेख - प्रिय-प्रवास, उद्वेग-शतक आदि में उपलब्ध होता है, यह माधुर्य भाव पर ही आधारित है । इस प्रकार सहज प्रवृत्ति, भाव और मनोभावों के माध्यम से आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का अध्ययन किया जा सकता है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व - कलापक्ष -

शैली के द्वारा कवि अपने भाव जगत को अभिव्यक्त करता है । कविता और भाव काव्य की आत्मा है तो शैली

शारीर । शैली की उत्कृष्टता ही कवि को गरिमा प्रदान करती है , एक सफल कवि के लिए यथास्थान अपने भावों के अनुस्यू शब्द प्रतीक एवं विभक्त्यादि का ज्ञान अति आवश्यक है । शैली का सम्बन्ध व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन से होता है । यह उस के द्रिया व्यापार एवं रचना कौशल से भी सम्बन्धित होती है । साहित्य में शैली अभिव्यक्ति की विनिश्चयिता है सम्बन्धित होती है । शैली में कवि के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का उल्लेख होता है । **कवि** अत्यन्त सम्यक्दर्शी, प्राणी होता है । बाह्य जगत् की प्रत्येक घटना का उसके अन्तर्गत पर तीव्र प्रभाव पड़ता है । तब उसका मानस बाह्य स्विदनाओं से बोधित हो जाता है तो उसकी भाव-धारा काव्य के रूप में फूट पड़ती है इस प्रकार शैली स्वयमेव सज्ज ग्राह्य एवं भावानुबल होती है । काव्य आत्म का अभिव्यक्त रूप है । कवि के मानस में अनेक भाव लहरियाँ प्रवाहित होती रहती हैं जो आत्मप्रकाशन के लिए प्रयत्नशील रहती हैं । यह प्रयत्न दो प्रकार का हो सकता है - अवचेतन और चेतन । अवचेतन में सौंदर्य हुई स्विदना अनुबल वातावरण प्राप्त कर स्वयमेव अपना प्रभाव अंकित करती हैं । काव्य शैली एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व है। उसमें कवि के समस्त जीवन की स्विदनाओं की अभिव्यक्ति होती है । कवि के शारीरिक, बौद्धिक , भावात्मक एवं चारित्रिक प्रवृत्तियों का शैली निर्माण में अमूर्त योग होता है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक

शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी शैली पर व्यक्तित्व के साथ साथ सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कविता को देने अनुकूलिक स्थानों की चिन्ता में प्रस्तुत कर देना मुक्त आत्म शैली है अन्तर्गत आता है। जब चेतन मन में कामुक भावनाएँ एक क्रम के रूप में प्रवाहित होने लगती हैं तो उस स्थिति को अनुकूलिक भावना प्रवाह कहा जाता है।

प्रसंग गर्भत्व शैली का प्रयोग शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरने के लिए किया जाता है।

सूक्ष्म व्यं शैली कवियों के पिछोही व्यक्तित्व की परिचायक है। बिम्ब मानस पर एक चित्रात्मक अनुभूति है, जो ऐन्द्रिय गुणों एवं भाव से अनुप्राणित होती है। व्यक्तित्व के चेतन और अचेतन की अनुभूतियों के बिना एक बिम्ब की रचना नहीं हो सकती। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक बिम्ब योजना को महत्व दिया गया है। रूप बिम्ब मनोविज्ञान की दृष्टि से दृष्टव्य बिम्ब है। पुरुष और नारी के रूप में प्रकृति का रूपान्तरण काव्य में रूप बिम्ब कहलाता है। नाद बिम्ब श्रवण इन्द्रियों से गृहीत बिम्ब होता है। काव्य में शब्दों को नाद सौन्दर्य की दृष्टि से रखा जाता है। गन्ध बिम्ब प्रकृति के माध्यम से इनकी सृष्टि की जाती है। स्वाद-बिम्ब की रचना प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार की जाती है। जिसे पढ़ कर रसास्वादन सम्भव हो सके। स्पर्श बिम्बों का भी काव्य में प्रयोग किया गया है। स्मृति बिम्ब पूर्वानुभवों

के आधार पर उपस्थित होता है। स्वप्न बिम्ब अवचेतन मन की सृष्टि है। तन्द्रा बिम्ब अर्धनिद्रित अवस्था में बद्धभूत होते हैं। मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्ब रुग्ण चेतना की सृष्टि होते हैं। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने मनोवैज्ञानिक बिम्बों के आधार को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

प्रतीक शब्द का तात्पर्य उस प्रत्यक्ष वस्तु से है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी दूसरी वस्तु का बोध अथवा आभास कराता है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रतीक - योजना का महत्वपूर्ण स्थान है। विचारात्मक प्रतीकों के कारण काव्य में बोद्धिज्ञता का समावेश होता है। भावोत्पादक प्रतीक प्रेम, वासना, कुण्ठा आदि की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य - व्यक्तित्व प्रलेखन -

काव्य की भाषा, शब्द, शैली, प्रतीक एवं बिम्ब आदि सभी काव्य तत्त्व व्यक्तित्व की विशेषता से ही विशिष्टता प्राप्त करते हैं। व्यक्तित्व पर वर्णानुक्रम और वातावरण का प्रभाव पड़ता है। काव्य की आलोचना के लिए कवि का व्यक्तित्व समझना आवश्यक है। व्यक्तित्व व्यक्ति के लिए व्यवहार का समग्र गुण है। व्यक्तित्व अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी होता है। कवि सैव्यमयील प्राणा है, अतः युगीन परिस्थितियों समस्याओं और कुरीतियों का प्रभाव उस पर भी पड़ता है इसलिए काव्य में इन वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति

होना स्वाभाविक है ।

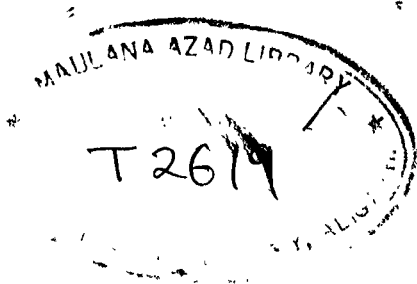
कवि का अवचेतन युगीन विषमताओं से आक्रांति है । सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति उसमें विद्रोह की भावना है । प्रतिजूल वातावरण भी व्यक्तित्व विकास में बाधा उपस्थित करता है । समाज में व्याप्त असन्तोष, दरिद्रता, तथा अराजकता के कारण कवि व्यक्तित्व अस्थायी, विकृति, कुण्ठित एवं पिश्रुलित है । परन्तु फिर भी कवि पलायनवादी नहीं है । उसका अहं विषम परिस्थितियों में उरो रक्षण करने को प्रेरित करता है । इसलिए आप का कवि अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी है । परन्तु अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व अपने आप में पूर्ण विशेषताओं को समाहित नहीं करते, बल्कि दोनों प्रवृत्तियाँ एक दूसरे व्यक्तित्व में अतिरूपण करती रहती हैं । अतः आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवि का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की विशेषताओं का एक पुन्ना है, जिसमें अन्तर्विरोधी धाराएँ प्रवर्धित होती रहती हैं।

उपसंहार -

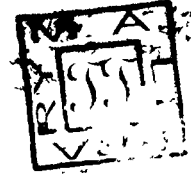
आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में एक ओर मानव मन के रागात्मक मनोभावों का चित्रण किया है, दूसरी ओर विरागात्मक, हास्य, अहं तथा दैन्य आदि मनोभावों का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है । शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण किया गया है । आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य शैली मनोवैज्ञानिक है । कवियों के

शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक और चारित्रिक पक्ष का काव्य पर प्रभाव पड़ा है। मनोवैज्ञानिक बिम्ब योजना का चित्रण किया गया है। प्रतीकों को भी समाहित किया गया है। कवि का व्यक्तित्व विश्लेषित है उसका अवचेतन युगीन विषमताओं से आक्रान्त है। कवि आवेगशील तथा संवेदनशील है, यह संवेदन बाह्य और आन्तर दोनों ही घरातलों पर सक्रिय है। राजनीति ने उसके अत्याचारों, अनाचारों तथा बेकारी को दूर करने में सहायता नहीं की है। भारतीय संस्कृति उसकी चेतना को छिन्न-भिन्न कर रही है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य नवीन परिकल्पना की उपज है। उसके भाव एवं कला पक्ष का पूर्ण अध्ययन मनोवैज्ञानिक कसौटी पर ही सम्भव है। कवि व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक भाव और मनोभावों का निरूपण आवश्यक है। नवीन मनोवैज्ञानिक शैली का विवेचन मनोविज्ञान की आधारशिला पर सम्भव है। प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में आधुनिक कृष्ण - काव्य के भाव तथा कला पक्षों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। भाव के क्षेत्र में आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य रागात्मक, विरागात्मक हास्य, अहं एवं दैन्य आदि मनोभावों का काव्य है। शैली के क्षेत्र में चेतना प्रवाह, मुक्त आसंग, अनुकम्पि भावना प्रवाह, प्रसंग गर्भत्व, सूक्ष्म व्यंग आदि शैली का प्रयोग किया जाता है, काव्य में बिम्ब और प्रतीक योजना भी मनोवैज्ञानिक है। व्यक्तित्व का विघटन भी मनोवैज्ञानिक है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक आधार ही प्रामाणिक है।



आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

डा० गिरधारीलाल शास्त्री

एम० ए०, पी०एच०डी०

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

शोधकर्त्री :

कुमारी माधुरी शर्मा

एम० ए० (हिन्दी, इतिहास, राजनीतिशास्त्र)

एम० एड० (साहित्यरत्न)

प्रवक्ता बी० एड० विभाग,

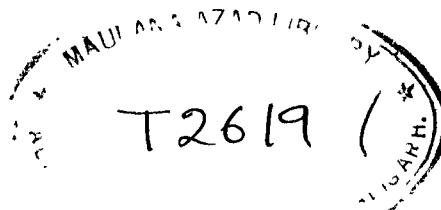
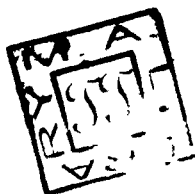
श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़ ।

✓ ~~RE~~
17/1/84

THESIS SECTION



T2619



SECRETED-2002

प्राक्कथन

आधुनिक वैज्ञानिक युग में काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। मनोवैज्ञानिक मानदण्डों के आधार पर काव्योलोचना प्रस्तुत करना अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। कवि एक भौतिक प्राणी है, वह विश्व के समक्ष अपनी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों को शब्दाकार रूप में अभिव्यक्त करता है। उसके काव्य का सम्बन्ध मन, विचार, भाव, संकल्प एवं प्रतिभा आदि मानसिक क्रियाओं से है। यदि कवि अपने विचारों, भावों आदि को शब्दाकार देता है तो दूसरी ओर मनोविज्ञान भी उस व्यक्ति के अन्तर्गत को विवक्षित करता है जो एक जीवित प्राणी है तथा क्षण में परिवर्तित होने वाले संसार, घटनाओं, मनुष्यों एवं वस्तुओं के साथ सादात्म्य स्थापित कर तदनुकूल व्यवहार करता है। अतः साहित्यकार तथा मनोविज्ञान का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। यदि साहित्य में मानसिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है तो मनोवैज्ञानिक उस अभिव्यक्त माध्यम द्वारा साहित्यिक की मानसिक क्रियाओं, मान्यताओं एवं व्यक्तित्व की जानकारी देने में सामर्थ्य प्रदान करता है। निस्संदेह काव्य के वस्तुपरक अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक निष्कष अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनोवैज्ञानिक आलोचना - शैली में भाषा, अक्षर शब्द, शक्ति, लयादि को स्वतन्त्र रूप में ग्रहण नहीं दिया जाता,

प्रत्युत मानसिक प्रक्रिया के मूर्त प्रतीक रूप एवं बिम्ब रूप में ही स्वीकार किया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इसी आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की अनेक शाखाओं को अस्तारित किया है, परन्तु साहित्य से सम्बन्धित किसी शाखा के नमूने का अभाव है। सर्वप्रथम कुछ पारंपार्य विद्वानों की दृष्टि इस ओर गयी और उन्होंने इस अभाव की पूर्ति के लिए साहित्य मनोविज्ञान की व्यवस्था को प्रतिष्ठापित किया। इस विज्ञान में निरन्तर कार्य प्रारम्भ किया गया, परिणामस्वरूप साहित्य का सम्बन्ध मनोविज्ञान की इस शाखा में निर्धारित किया गया जो साहित्य में प्रति-पादित विचारों, धारणाओं, वर्णित भावों, मानसिक-प्रवृत्तियों, व्यक्तित्व, स्वभाव और व्यवहार का अध्ययन प्रस्तुत कर सके।

साहित्य में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए मुख्यतः तीन पद्धतियों - सामान्य, प्रयोगात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति को आधार रूप में स्वीकार दिया जाता है। सामान्य पद्धति में अन्तर्गत साहित्यकार एवं उसकी कृति का मनोवैज्ञानिक ढंग से सामान्य विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। आलोचक इस पद्धति द्वारा साहित्यकार की साहित्य रचना में प्रवृत्ति, रचनाओं पर युगीन समाज, संस्कृति, राजनीति, परम्परादि का प्रभाव परिलक्षित करने में सफल हो जाता है। साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह पद्धति ही कार्य रूप में प्रयुक्त की जाती है। प्रयोगात्मक शैली में साहित्यकार अथवा कवि की विभिन्न पद्यांशों अथवा गद्यांशों के घट्टन के आधार पर प्रश्नावली तैयार की जाती है। विश्लेषणात्मक पद्धति में फ्राइड की मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा को आधार रूप में स्वीकार करके साहित्य का

मनोवैज्ञानिक विवेकन किया जाता है। फ्राइड के मतानुसार साहित्यकार की साहित्य में प्रवृत्ति काम - वासना के कारण होती है। परन्तु यह विचारधारा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। फ्राइड ने अवचेतन मन को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उसके अनुसार अवचेतन में विद्यमान काम - वासना कुंठाएँ आदि ही काव्य कला तथा स्वप्नों की सृष्टि करती हैं। ये कुंठाएँ प्रतीक-रूप शब्दाती का विशेषण साहित्यकार की मानसिक प्रवृत्ति, विचार तथा भाव आदि के ज्ञान में सहायक सिद्ध होता है।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में मनोविज्ञान की सामान्य एवं मनोविवेचनात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है। यद्यपि फ्राइड की मनोविवेचनात्मक पद्धति तथा एडलर की अधिकार प्रवृत्ति का मेलन के सत्य - प्रवृत्ति - सिद्धान्त में समावेश हो जाता है, परन्तु फिर भी आवश्यकता पड़ने पर मनोविवेचना शैली को भी आनुपातिक स्थान दिया गया है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य की मनोवैज्ञानिक आलोचना के इतिहास में प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध एक मौलिक प्रयास है। शोध - प्रबन्ध में भाव - पक्ष, कला - पक्ष, तथा व्यक्तित्व निरूपण की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक मानदण्डों द्वारा विस्तृत विवेकन प्रस्तुत किया गया है। भाव - पक्ष में मनो-वैज्ञानिक रागात्मक, विरागात्मक, ऊर्ध्व, दैन्य तथा हास्य मनो-भागों का स्थान निर्धारित दिया गया है। कला - पक्ष की दृष्टि से बिम्ब-विधान, प्रतीक - विधान तथा शैली का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। बिम्ब - विधान में

रूप - बिम्ब, नाद - बिम्ब, गन्ध - बिम्ब, स्वाद - बिम्ब, स्पर्श - बिम्ब के साथ साथ चेतन मन के स्मृति तथा कल्पना बिम्बों एवं अचेतन मन के स्वप्न - बिम्ब, तन्द्रा - बिम्ब, मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्ब तथा वात बिम्बों का आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में स्थान निर्धारण मौलिक प्रयास है। प्रतीकों की दृष्टि से भावमूलक तथा विचार मूलक प्रतीकों का विवेक प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य शैली मनोविज्ञान के अत्यन्त निकट है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य की सम्यक आलोचना बिना मनोवैज्ञानिक मानदण्डों के असम्भाव्य है। युगीन कवियों ने मनोवैज्ञानिक शैली प्रक्रिया को सर्वाधिक अपनाया है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रतिष्ठापित नवीन जीवन - मूल्यों की समालोचना प्रस्तुत करने के लिए परम्परावादी मानदण्ड अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। आलोचकों ने नये काव्य में रस निष्पत्ति का अभाव पाकर तथा स्वप्न - चित्र आदि मनो-वैज्ञानिक शैलियों के कारण आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य को काव्य की सीमा से बाहर का घोषित किया है। परन्तु वास्तविकता का निराकरण प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध की अपेक्षा रहता है। यदि आधुनिक कवि के काव्य को परम्परावादी रस - सिद्धान्त से विवेचित नहीं किया जा सकता तो इसमें कवि का दोष नहीं बल्कि बदलते हुए जीवन - मूल्यों के युग में रूढ़ आलोचनात्मक मानदण्ड ही दोषी है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्यक्त अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक मापदण्ड ही उपयुक्त है। काव्य में अभिव्यक्त मानसिक दृष्टियों, संघर्षों आदि की

विवेचना मनोविज्ञान के मानदण्डों से ही सम्भव है, क्योंकि मनो-विज्ञान साहित्य में अभिव्यक्त मनोभावों, संघर्षों आदि के लिए उपयुक्त मानदण्ड स्थापित करता है। अतः प्रस्तुत शोध ग्रन्थ आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य आलोचना के अध्याय में एक आवश्यकता की पूर्ति का प्रतिपादक सिद्ध होगा।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य का अध्ययन मनोवैज्ञानिक आधार पर ही सम्भव है। प्राचीन मानदण्डों के आधार पर नये काव्य की आलोचना प्रस्तुत करना नये काव्य के साथ म्याय नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में अभिव्यक्त भावात्मक प्रवृत्तियों, अभिव्यक्ति शैली तथा व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सम्पूर्ण शोध - प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में भारतेन्दु युगीन कृष्ण काव्य, द्वितीय अध्याय में द्विवेदी युगीन कृष्ण - काव्य, तृतीय अध्याय में छायावादी युगीन कृष्ण - काव्य को प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय भावात्मक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। प्रस्तुत अध्याय सत्त्व प्रवृत्तियों, भाव मनोभाव आदि का विराद विवेचन प्रस्तुत करता है। यहां रागात्मक, विरागात्मक, हास्य, अहं तथा दैन्य आदि मनोभावों का आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य के संदर्भ में विराद विवेचन भी संलग्न है।

पंचम अध्याय मनोवैज्ञानिक शैलियों जैसे - चेतना प्रवाह

मुख्यतः आरंभ, अनुक्रमिक भाषणा प्रवाह, प्रसंग गर्भत्व, सूक्ष्म व्यंग्य, पैन्टसी आदि का विवेचन प्रस्तुत करता है। बिम्ब तथा प्रतीकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस अध्याय की मुख्य विशेषता है। मनोवैज्ञानिक बिम्बों में शब्द, गन्ध, स्पर्श, स्मृति, कल्पना, स्वप्न, तन्द्रा, मिथ्या प्रत्यक्ष तथा बाह्य बिम्बों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रतीकों को भाषोत्पादक तथा विचारोत्पादक वर्गों में विभाजित किया गया है और उसमें आधुनिक काव्य प्रतीकों का चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ - अध्याय में व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। सप्तम अध्याय में शोध - प्रबन्ध का मूल्यांकन सन्निहित है।

सुयोग्य निर्देशक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० गिरधारी लाल शास्त्री जी के निर्देशन में प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध लिखा गया है। मैं उनके प्रति विशेष जाभारी हूँ। जिन अन्य विद्वानों के सद्परामर्शों और ग्रन्थों से मैं लाभान्वित हुए हूँ उनमें प्रो० प्रेम स्वरूप गुप्त, प्रो० विजय पाल सिंह, प्रो० नगेन्द्र, प्रो० नित्यानन्द शर्मा, प्रो० शंकर लाल यादव, डा० नजीर मुहम्मद, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० रवीन्द्र प्रसन्न, डा० गेदा लाल शर्मा, डा० उषा भार्गव, डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

अने शोध - कार्य में मुझे अलीगढ़ मुस्लिम विश्व - विद्यालय, अलीगढ़ की मौलाना आजाद पुस्तकालय, मालवीय

पुस्तकालय . अलीगढ़ . धर्म समाज कालेज पुस्तकालय, वाष्णोय
कालेज पुस्तकालय, और टीकाराम कन्या महाविद्यालय पुस्तकालय
अलीगढ़ के संचालकों ने जो बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया है . उसके
प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ ।

माधुरी शर्मा
- कुमारी माधुरी शर्मा

विशेष -

अलीगढ़ में टाइप की विशेष सुविधा प्राप्त न होने के
कारण आवश्यक हस्त लेखन कार्य के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ।

माधुरी शर्मा

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

विषय - सूची

प्रथम अध्याय

[15-34]

भारतेन्दु युगीन कृष्ण - काव्य का स्वरूप विश्लेषण

[क] भारतेन्दु ग्रन्थावली

[ख] चन्द्रावली नाटिका

[ग] पुष्कर सदैया - कवित्त

द्वितीय अध्याय

[36-88]

द्विवेदी युगीन कृष्ण काव्य का स्वरूप विश्लेषण

[क] उदय - शतक : जगन्नाथ प्रसाद "रत्नाकर"

[ख] द्वापर : मैथिली शारणा गुप्त

[ग] जयभारत : मैथिली शारणा गुप्त

[घ] जयद्रथ - वध : मैथिली शारणा गुप्त

- [च] कृष्णायन : झारिका प्रसाद मिश्र
 [छ] पुगलपद जेदन : कृष्णा मा
 [ज] शरिर सर्वस्व : नाथू राम शर्मा "रंजर"
 [झ] प्रिय - प्रवास : ज्योद्ध्या सिंह उपाध्याय "हरिबोध"

तृतीय अध्याय

[89-130]

छायावाद तथा छायावादोत्तर कृष्ण - काव्य का

स्वरूप विश्लेषण

- [क] कनुप्रिया : कर्मवीर भारती
 [ख] रश्मि रथी : रामधारी सिंह "दिनकर"
 [ग] महादेवी वर्मा
 [घ] सुमित्रानन्दन पन्त
 [ङ] सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

चतुर्थ - अध्याय

[131-160]

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व -

भाव पक्ष =====

[अ] सत्त्व प्रवृत्तियाँ : सामान्य विवेचन

॥क॥ सत्त्व प्रवृत्ति शब्द की व्याख्या

॥ख॥ सत्त्व प्रवृत्तियों का वर्गीकरण

[ब] भाव का स्वरूप

[स] भाव एवं सत्त्व प्रवृत्तियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

[द] मनोभाव, स्वरूप और विकास

[ध] आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्य में मनोभावों का स्थान

॥क॥ वात्सल्य भाव

॥ख॥ सख्य भाव

॥ग॥ सयोग शृंगार भाव

॥घ॥ विक्रमश्रृंगार भाव

॥च॥ रागात्मक मनोभाव

॥छ॥ विरागात्मक मनोभाव

॥ज॥ हास्य मनोभाव

॥झ॥ अहं मनोभाव

॥ट॥ दैन्य मनोभाव

पंचम अध्याय

[162-196]

आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व - कलापक्ष

- [अ] शैली सामान्य चिन्तेषु
- [ब] शैली शब्द की मनोवैज्ञानिक व्याख्या
- [स] आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक शैली का स्थान
- [द] चिन्त - विधान
 - [क] चिन्त : शब्द का अर्थ
 - [ख] चिन्त : मनोवैज्ञानिक व्याख्या
 - [ग] चिन्तों का वर्गीकरण
- [ध] आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक चिन्त योजना
- [न] प्रतीक योजना
 - [क] प्रतीक : शब्द का अर्थ
 - [ख] प्रतीक : मनोवैज्ञानिक व्याख्या
 - [ग] प्रतीकों का वर्गीकरण
- [प] आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक प्रतीक योजना

षष्ठ अध्याय

[198-209]

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य : व्यक्तित्व विश्लेषण

- [ch] व्यक्तित्व शब्द की व्याख्या
- [ख] व्यक्तित्व निर्माण में कालरम्यता एवं वातावरण का प्रभाव
- [ग] आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्य में व्यक्तित्व का प्रतिफलन :
व्यक्तित्व विघटन की समस्या

सप्तम अध्याय

[211-218]

- [ch] उपरालार
- [ख] मूल्यमूल

परिशिष्ट

[220-229]

- [ch] हिन्दी ग्रन्थों की सूची §काव्य §
- [ख] आलोचनात्मक ग्रन्थों की सूची
- [ग] मनोवैज्ञानिक ग्रन्थों की सूची
- [घ] लिस्ट ऑफ इंग्लिश बुक्स

प्रथम - अध्याय

भारतेन्दु युगीन कृष्ण काव्य का स्वरूप विश्लेषण

- [क] भारतेन्दु ग्रन्थावली
- [ख] चन्द्रावली नाटिका
- [ग] पुटकर सवैया - कवित्त

प्रथम - अध्याय

=====

भारतेन्दु युगीन कृष्ण काव्य का स्वरूप

रीति काव्य जल अन्तिम साँसे ले रहा था, उस समय भारतेन्दु काल आरम्भ हो रहा था। भारतेन्दु ने भाषा और विषय दोनों दृष्टियों से हिन्दी काव्य का नवीनता प्रदान की। काव्य को शृंगार की मादकता से हटा कर उसमें जन जागरण के भाव भरे। उन्होंने खड़ी बोली को काव्य की भाषा बनाया। इस युग में भारतेन्दु के अतिरिक्त भी और प्रतिभाशाली साहित्यकारों ने साहित्य का सृजन किया। अंग्रेजी शिक्षा और विचारधारा का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य पर पड़ा। सामाजिक क्षेत्र में स्वामी दयानन्द के द्वारा जो सुधार हुआ उसका परिणाम भी बहुत उत्तम हुआ। नायिका भेद और अलंकारों के स्थान पर देश-प्रेम, राज्य-भक्ति और समाज सुधार को काव्य का विषय बनाया गया। ब्रज-भाषा में पर्याप्त काव्य रचना होती रही फिर भी खड़ी बोली की प्रगति अमन्द गति से होती रही।

कविता के विषय नायिका भेद, रस और अलंकार निरूपण के स्थान पर राज भक्ति, देश - भक्ति और समाज सुधार तथा भाषा प्रेम सम्बन्धी हो गये। काव्य में सामाजिक रुढ़ियों और कुरीतियों का विरोध राष्ट्रीय भावना को स्थान दिया गया। काव्य परम्परा यद्यपि भक्ति काल और रीति काल के आधार पर चलती रही किन्तु भारतेन्दु युग की कविता में उर्दू के वेदनात्मक तत्त्व का समावेश हुआ। कवियों का ध्यान प्रकृति के आलम्बन रूप की ओर गया। भारतेन्दु युग में आनन्द दाताओं की प्रशंसा के लिए

काव्य में स्थान न रहा । कविता जन जीवन के समीप आकर यथार्थ की भूमि पर उड़ी हो गई । हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण गद्य और पद्य में रचनाएँ हुईं । काव्य में अतीत गौरव की झाँकी उपस्थित की गई । इस युग के काव्य में सजीवता कूट - कूट कर भरी हुई थी । भारतेन्दु के समय लोक गीतों का भी प्रचार हुआ । छोली, कजली आदि विभिन्न प्रकार के लोक गीतों की रचनाएँ हुईं । भारतेन्दु युग प्राचीन और नवीन के मध्य एक झुल्ला बन कर उपस्थित हुआ था । नवीन विषयों का समावेश भी भारतेन्दु युग की साहित्यिक देन है ।

भारतेन्दु - युग की कविता का मूल्य केन भाव अथवा कला के दृष्टिकोण से करना उत्पन्न ही दुष्कर है । क्योंकि जहाँ तक भाव का प्रश्न है इस युग की कविता में भक्ति का अथवा छायावादी कविता के सङ्का, भाव गाम्भीर्य उपलब्ध नहीं होता है । इसके अतिरिक्त कला के क्षेत्र में भी वह उत्कर्ष नजर नहीं आता जिसे कि रीति काल में देखा जाता है । इस काल की कवियों में अनुभूति की सत्यता की झाँकी मिलती है । इस काल के कवियों में नवीनता जरूर पायी जाती है । भारतेन्दु काल आधुनिक काल का उदय था । अतः इसके इस महत्त्व की तुलना अन्य से हो सकना असम्भव है । इस काल के कवि अपने कर्तव्य के प्रति सदैव दृष्टि-गोचर होते हैं । तात्कालिक परिस्थिति का निर्भीकता के साथ चित्रण मिलता है । इन कवियों की नैतिकता, वैय्य एवं सत्यता प्रशंसा की पात्र हैं ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द तथा उनके युग के अधिकांश कवियों ने प्राचीन परिपाटी को त्यागते हुए भी हिन्दी की नवीन गति में भी योगदान दिया है । धीरे धीरे समय के साथ ही साथ हिन्दी

की नवीन गति के प्रति कवियों का आग्रह बढ़ने लगा और अधिकांश कवि खड़ी बोली को ही काव्य की भाषा स्वीकार कर इसी में काव्य रचना करने लगे ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द =====

हिन्दी काव्य का आधुनिक युग भारतेन्दु हरिश्चन्द से ही आरम्भ होता है । सन् 1857 की जन - क्रान्ति के कारण भावना के क्षेत्र में नवीन विषयों का समावेश हुआ । भारतेन्दु ने समाज से सम्पर्क स्थापित किया और उसकी समस्याएँ अपने काव्य में चित्रित की । इसलिए भारतेन्दु की कविता में भक्ति और शृंगार के साथ देश - प्रेम और समाज - सेवा की भावना का स्वर सुनाई पड़ा । भारतेन्दु की अधिकांश कविताएँ भक्ति प्रधान और शृंगार प्रधान हैं । उनमें रसखान, मीरा और घनानन्द की पीर और सूर की भक्ति भावना एक साथ मिलती हैं । भारतेन्दु हरिश्चन्द प्राचीन और आधुनिक काव्य के रीति स्थल पर खड़े हुए युग पुरुष हैं । उनके काव्य में सन्त काव्य, भक्ति काव्य और रीति काव्य की परम्पराएँ मिलती हैं । वे उदार दृष्टिकोण के वैष्णव भक्त हैं । उन्होंने अपना परिचय " सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के " कह कर दिया है -

सेवक गुनी जन के, दाकर चतुर ते हैं,
कवि के मीत, चित्त बित गुनी ग्यानी के ।
सीकेन सों सीके, महा बाकि हम बाकिन सों,
"हरिचंद" नगद दमाद अभिमानी के ॥
वाहिदे की चाह, काहू की न परवाह, नेही
नेह के दिवाने सदा सुरत निवानी के ।

सरवस रसिक है, सुदास दास प्रेम्भिन के,

सजा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के ॥¹

राधा के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करते हुए लिखा है -

हम वाकर राधा रानी के ।

ठाकुर श्री नंदनंदन के, कृष्णभानु - क्ली ठकुरानी के ॥

निरभय रत्न वदत नहिं काहू, डरनहि डरत भवानी के ।

"हरिचंद" नित रत्न दिवाने, सुरत अब दिवानी के ॥²

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को " प्रेम का कवि " कहा जा सकता है । प्रेम ही उनका सर्वस्व था । उनकी प्रेम भावना ही समाज, प्रेम, देश-प्रेम, ब्रज-प्रेम और कृष्ण - प्रेम आदि के विविध रूप धारण करती है । उनमें प्रेम का आदर्श बहुत उच्च था -

जेहि लहि पिरि कहु लज की, आरम पित में होय ।

त ति लज, गजन करन, प्रेम वरन यत् दोय ॥³

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त भाव - विभोर होकर राधा, कृष्ण, यमुना और वृन्दावन के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है -

तम पुलकित रोमांच करि, नैननि नीर बहाव ।

प्रेम मग्न उन्मत्त हूँ, "राधा-राधा" गाव ॥⁴

श्री कृष्ण परब्रह्म है और उनकी प्राप्ति के लिए संसार को छोड़ना भी बेयत्न है । यथा -

1- ब्रज माधुरी सार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - कविता क्ली, पृ० 322

2- ब्रज माधुरी सार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - कविता क्ली, पृ० 335

3- वही , पृष्ठ सं० 323

4- वही , पृष्ठ सं० 323 दोहा 7

मोरो मुख बर और सो, तोरो ब्र के जाल ।
छोरो सब साधन सुनो, भजो एक नन्द लाल ॥ -1

यमुना जल और वृन्दावन की महिमा का वर्णन करते हुए
लिखा है -

श्री जमुना - जल पान कर, उस वृन्दावन - काम ।
मृत में मरा प्रगाद रख, ते श्री बल्लभ - नाम ॥ -2

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने आधुनिक युग के ब्रज की दुर्दशा
का बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत दिया है और अनाथ ब्रज, गो, गोप
और ग्वालों की दशा सुधारने के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है
कि उन्हें ब्रज में अविलम्ब आना चाहिए -

रहे यह देखन को दुग दोय ।
गये न प्राण क्यों अखियाँ ये जीवित मिलज होय ॥
सोई कुंज ए हरे देखियत, सोई सुक, पिक, कीर ।
सोई सेज परी सुनी हवे, बिना मिले कलवीर ।
वही बरौसा, वही अटारी वही गली वही साँझ ॥
वह नाहि जो केनू ब्यावत, ऐ हैं गलियन माँझ ।
ब्रज हूँ वही, वही गौर ये, वही गोप और ग्वाल ।
बिहारे सब अनाथ से ठोक्त ब्याकुल बिना गुमाल ॥
नंद भवन सुनो देखत क्यों गयो नहि द्विय पढट ।
हरीचंद उठि बेगहि धावो, पेरहु ब्रज की बाट ॥ -3

1- ब्रज माधुरी सार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कवितावली, पृ० 323 दोहा

2- वही , पृ० 323 दोहा 6

3- वही , पृष्ठ सं० 328

भारतेन्दु जी सनातन धर्म को उचित परिवर्तनों के साथ ग्रहण करना चाहते थे । सनातन धर्म की प्रतिष्ठा को वह उसी स्तर पर रखना चाहते थे जिस पर वह कुछ दिन पहले थी । वह धर्म का सच्चा स्वरूप उसकी आत्मा जनता के सम्मुख रक्षित करना चाहते थे । उनका विचार था कि यदि सनातन धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय तो उसकी उदारता के कारण अन्य धर्मों की आवश्यकता ही न रहेगी । यह मूल तथा निर्दोष निस्सार नवीन धर्म समाजों की अस्तित्वकला को भी सिद्ध कर सकता है । इन परिस्थितियों से प्रेरित होकर सर्व प्रथम उन्होंने सब धर्मों का भली प्रकार अध्ययन किया और तत्पश्चात् अनुवाद छाया अनुवाद तथा मौलिक ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ की । बल्लभ रामप्रदाय के अनुयायी वैष्णव भक्त श्री भारतेन्दु जी की रुचि वाल्यावस्था से ही धर्म की ओर विशेष थी । वे धर्म के तत्त्व को भली प्रकार समझते थे । उनमें भगवान् श्रीकृष्ण का प्रेम समाया हुआ था । तर्क हीन धर्म श्रद्धा तथा भगवत् प्रेम के वे पक्षपाती थे । पौराणिक सिद्धान्तों, दर्शनशास्त्र, आदि का महत्त्व भी आप जानते थे । कार्तिक स्नान नामक ग्रन्थ में लिखा है -

शास्त्र एक गीता परम, मन्त्र एक हरिनाम ।

कार्य एक पद कृष्ण, देव एक धन श्याम ॥

किन्तु पौराणिक धर्म का बाह्य आवरण धर्म तत्त्व तक पहुँचाने का एक साधन मात्र है था - तैसा नहीं उनका लक्ष्य नहीं था । अन्य कृष्ण भक्ति का परिचय देते हुए लिखते हैं -

पूजि के कानिहि सत्रु हतो, कोऊ लक्ष्मी पूजि महाधन पायो,
सेइ सरस्वति पण्डित होऊ, गेसहि पूजि के विद्वान् मताओं ।
ज्यों हरिवन्द जू ध्याई शिवै, कोऊ वार पदारथ हाथ ही
मेरे तो राखि नायक ही गति लोक दोऊ रहो के नहि जाओ ॥

केशाख माहलस्य में स्नान वर्णन के लाभ बतलाते हुए कहते हैं -

ब्राह्मण गत सौ पूछि कै, नियम शास्त्र को मान ।

हरिहि नौमि संकल्प करि न्याय समेति विधान ॥

परम्परागत कर्मकाण्ड में भारतेन्दु जी को आस्था थी, उन्होंने सिद्धान्तवादी ग्रन्थों की रचना पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर की है ।

भारतेन्दु जी सभी धर्मों की भली वस्तुओं का सदा ध्यान किया करते थे । ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा जैन धर्म में उन्हें पूर्ण आस्था नहीं थी किन्तु इन सब धर्मों को वे कल्याणकारी मानते थे -

पूजिहो देवी न देव कोऊ तिन तेद . पुरातन उँधि पुकारो ।
काहु सों ताम नही जू नोएि सबे अपनी अपनी को संभारो
हो बनिहो कि नताखो था सों यहै प्रन है हरियन्द हमारे
मानिहो एक गोपानिहि को नहि और के बाप को यामे
हजारो ॥

भारतेन्दु जी अन्य धर्मों के विरोधी नहीं थे । वे अपने गृहीत मार्ग पर अन्य आस्था व्यक्त करना ही अपना उद्देश्य मानते थे । उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि वे अन्य धर्मों के विरोधी नहीं थे । वह तो स्वयं लिखते हैं -

अहो तुम बहु विधि रूप धरो

जब जब ऐसा काम परै तब तैसा भेज धरो ।

कहुँ ईश्वर कहुँ बनत अनीश्वर नाम अनेक धरो ।

किन्तु भगवत प्रेम ही आपका परम धर्म तथा सिद्धान्त था और इसी से लिखते हैं -

भेटि दैव देवी सकल छाँडि कठिन फूल रीति ।
छायो गृह में प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति ॥¹

यद्यपि आप कहीं कहीं पर श्रीकृष्ण को सदा भाव से भी देखते हैं, किन्तु प्रधानतः वे राधा-कृष्ण को गुरु रूप में ही मानते थे -

भजों तो गुपाल ही को से नैं तो गुपाले एक
मेरो मन लाग्यो सब भक्ति नन्दलाल सो ।
मेरे दे-दे न गुरु माता पिता बन्धु छूट
किन्ना सदा हरि, ना तो एक गोप लाल सो ।
हरिचन्द जोर सो न मेरो सम्बन्ध बन्ध कछु
आसरो सदैव एक लोकन किसान सो ।
मागौ तो गुपाल सो न मागौ तो गुपाल ही सो,
रीझो तो गुपाल ही पेछीजो तो गुपाल सो⁻² ॥

भक्ति काव्य :

भारतेन्दु प्रेमा भक्ति के अनुयायी थे । उनके ग्रन्थों में सात्त्विक तथा शृंगारात्मक भक्ति साथ साथ पायी जाती है । सात्त्विक भक्ति विषयक कविताओं में भारतेन्दु जी की सात्त्विकता सूर आदि के समान है । अपनी प्रार्थना में कवि अत्यन्त उत्कण्ठा से कर अभिलाषा करता है कि कब जगन्माता राधा के चरणों में आश्रय मिलेगा -

श्री राधे मोहि तनो कब करिहो ।
जुगल रूप रस अमृत माधुरी कब कन नैनहि भरिहो ।

1. प्रेम मालिन्का, पृ० 64
2. विनय प्रेम पंचास, पृ० 912

कब या दीन हीन निज जन पे ब्रज को वास हरि हो ।
हरि चन्द कल भव क्लृप्त हैं कुज धरि वाह उवारि हो ॥⁻¹

अनन्त प्रतीक्षा से वह व्याकुल होकर पुकार उठते है -

वहो हरि कस प्य बहुत भई ।

अपनी दिसि चिलोकि करना निधि कीजे नाहि नई ॥⁻²

यह आत्मसमर्पण कवि की अन्य श्रद्धा का परिचायक है ।
वे अपने उपास्य में इतना तल्लीन हो चुके हैं कि ईश्वर का अमान उन्हें
अमान लगता है । तभी सैकड़ों भगवान की प्रतिष्ठा का इतना
ध्यान है । वह कहता है - " नहि तो हँसी तुम्हारी है । ",
" फलि है अजस तुम्हरो भारी । " फिर भी उन पर कोई प्रभाव न
पड़ने पर वह आत्म निवेदन करता है - " पियारे क्यों तुम आवत
याद । छुटत सफल काज जग के सब मिटत भोग के स्वाद ॥ " ⁻³

" नरवरा राह राह दो नीकों, " कह कर कवि भगवान को उपालम्भ
की सहायता से अपनी ओर आकर्षित कर लेना चाहता है और अपनी
दीनता में " सुटाई पोरहि पोरहि पोर भरी " भी बतलाता है ।
भारतेन्दु जी साहित्यिकता में सरसता है और सरलता है । तन्मयता
के साथ दास्य सह्य भावों का मार्मिक वर्णन किया गया है ।

भारतेन्दु जी की रुचि शृंगार कविता की ओर थी । किन्तु
भक्ति भी उनके जीवन का प्रमुख अंग थी । इनकी शृंगारिक कविता
साहित्यिक अथवा शृंगारिक श्रेणी में विभाजित करना सम्भव नहीं है ।
राधा - कृष्ण की लीला सम्बन्धी अथवा दाम्पत्य रति सम्बन्धी भाव
भक्ति की धारा इनके काव्यों में है । यथा-

1- प्रेम पुलवारी, पृ० ३५

2- वही, पृ० ३५

3- वही, पृ० ४२

बार बार पिय जारसी म., देाहुँ धित लाय ।
 सुन्दर जोमल रूप पे दीठि न कहूँ लगि जाय ।
 देखन देहु न जारसी सुन्दर नंद कुमार ।
 कहूँ मोहित ह्वै रूप निज मति मोहि देहु विचार ॥ -1

भारतेन्दु जी की रागात्मक आत्मीयता तथा आत्मनिवेदन का स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

राखीति नेनन मैं हिंस मैं भरि दूरि भये छिन होत अवैत हैं ।
 सोतनि ही तहै कौन क्या तसवीरहुँ सौं तत राति सहेत हैं ।
 लाज भरी जुराग भरी हरिचन्द सबै रस जापुहि लेत है ।
 रूप सुधा फली ही पियै पियतू को न जारसी देखन देत है ॥2

लीला सम्बन्धी काव्य में विरह, संयोग आदि का सुन्दर वर्णन मिलता है । महाकवि जयदेव की भाव धारा तथा शैली दोनों से प्रभावित होकर भारतेन्दु जी हिन्दी और संस्कृत दोनों में लिखते हैं । उनकी शृंगार भक्ति हिन्दी, उर्दू, संस्कृत आदि सब भाषाओं तथा शैलियों में प्रदर्शित की गई है । भारतेन्दु जी का काव्य हिन्द. साहित्य में विशेष कर अपने शृंगार भक्ति तथा राष्ट्रीय भावों के लिए महत्वपूर्ण है । एक ओर भक्ति शृंगार से प्रभावित सरल तथा भावुकतापूर्ण ब्रज भाषा काव्य तथा दूसरी ओर कृष्णा पूर्ण भारत की दुर्दशा वर्णन खड़ी बोली आदि में मार्मिक तथा लोकप्रिय है । वैष्णव सङ्गदाय के आधार पर भारतेन्दु जी ने अपने शृंगार भक्ति के काव्य में श्री श्रीमद् भागवत की कथाओं और लीलाओं का आश्रय ग्रहण करके अपने को कृष्ण के रूप सौन्दर्य में निमग्न कर दिया है ।

1- प्रेम माधुरी, पृ० ६५

2- वही, पृ० ८२

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रेम भक्ति की अनन्य भावना का चित्रण किया है । यथा -

कहाँ मिल सजि है ? पियारे तौ मिलन काज,
 कहाँ तू छड़ी है ? पियारे ही को यह धाम है
 कहाँ कहे मुख तौ ? पियारे प्रान प्यारे ।
 कहाँ काज है ? पियारे तौ मिलन मोहि काम है ।
 मैं हूँ कौन बोल तौ ? हमारे प्रान पियारे हो न ?
 तू है कौन ? प्रीतिम पियारी मेरो नाम है ॥ -¹

यह सन्मयता और अनन्यता प्रेम भक्ति की आत्मा है ।
 इससे आश्रम में यह भक्ति रह नहीं सकती है । चन्द्रावली की भक्ति
 वैसी नहीं है, रागात्मक और प्रेम की पराकाष्ठा है । भक्त भगवान्
 से अनुग्रह की याचना करता है और उसी अनुग्रह के कारण उसे
 सच्चा लोक प्राप्त होता है । ईश्वर की कृपा मिलन का एकमात्र
 साधन है । ईश्वर भी जीव के अनुराग पर मुग्ध है -

गुरु विरह दियो उपदेश सुनो ब्रज बाला ।
 पिय बिछुरन दुःख विछाओ तुम मृगछाला ।
 मन के मनके की ल्यो पिय की माला ।
 विरहित की तो हैं सभी निराली चाला ॥ -²

चन्द्रावली प्रेम की उन्नता प्राप्त करती है । उसे किय
 में किसी का कुछ भी ध्यान नहीं है और वह इस बात का ध्यान भी
 नहीं करना चाहती है । वहाँ तो निरन्तर मूर्छा ही प्रेम की सत्यता
 की साक्षी है ।

5

1- चन्द्रावली नाटिका पृ० 118

2- चन्द्रावली नाटिका पृ० 55

हरीषद औरों छबरात समुझाएँ हाय ।
 हियकि हियकि रोवै जीवति मरी रहे ।
 याद जावै सखि रोवा वै दुख कहि कहि -
 तो लो सुख पावै जो लो गुरभि परी रहे ॥ -

भारतेन्दु द्वारा अभिव्यक्त चन्द्रावली का प्रेम प्रीति का प्रेम है । इसमें अनन्यता का स्थान अधिक है । यह दिव्य प्रेम ही भक्ति है जो तारे संसार को भूल कर केवल छिवर की ओर व्यक्ति को ले जाता है ।

[a] श्री चन्द्रावली नाटिका :

चन्द्रावली नाटिका की कथा का आधार चन्द्रावली का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है और उसी प्रेम को लेकर समस्त कथा का विकास किया गया है । कथा सीधे सादे पेड़ के समान है । उसमें कहीं भी शाखाएँ नहीं हैं । कथा प्रेम के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग से परिपूर्ण है, परन्तु वियोग पक्ष की सत्ता संयोग से अधिक है । चन्द्रावली समस्त नाटिका में व्याकुल दिखाई पड़ती है । केवल अन्त में श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं ।

भारतेन्दु जी ने इस नाटिका को कथा का विभाजन चार अंकों में किया है । इसमें चार अंकों में श्री चन्द्रावली और कृष्ण के अनन्य प्रेम की भाँक, प्रदर्शित की गई है । आरम्भ में चन्द्रावली को अत्यन्त चिन्तित मुद्रा में दिखाया गया है । वे तो यह यही कहती हैं, " मैं सब कहती हूँ मुझे कोई सौध नहीं, और वस्तुतः उसे किसी बात का अभाव नहीं है, परन्तु ललितता के शब्दों में "सखी

मेरा मुँहड़ा बंदे देता है कि तू कुछ सोच करती है * एक महत्वपूर्ण सत्य छिपा हुआ है। चन्द्रावली को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करना पड़ता है कि * सखी मैं क्या : : दूर, मैं कितना चाहती हूँ कि यह ध्यान भूला दूँ पर उस निरुर की छवि भूलती नहीं।

द्वितीय अंक में विरह और भी तीव्र हो जाता है वह सब कुछ भूल कर कृष्ण की ही चिन्ता में बावली हो जाती है, वह प्रलापावस्था तक जा पहुँचती है। वह अपनी आँखों एवं हृदय को कोसती है। प्रकृति उसके विरह को और भी तीव्र कर देती है। तृतीय अंक में वह अपने प्रियतम को पत्र भिजवाती है। इस अंक में विह वयथा की पराकाष्ठा है। झूला गायन, नृत्य आदि भी उसके विरह को बढ़ाते हैं। चन्द्रावली श्री कृष्ण के प्रेम में इतनी बेवस हो जाती है कि भाँति भाँति के प्रलाप करने लगती है। कभी वह जनदेवी को ही श्रीकृष्ण समझ लेती है, कभी उन के वृक्षों से पूछती है - अरे वृक्षों बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे औरों, इस समय नहीं बोलते, नहीं तो रात को बोल बोल कर प्राण छाये जाते थे। कहो न वह कहाँ छिपा है ? * कभी - कभी वह गाने लगती है और भाँति भाँति में इतनी बह जाती है कि पेड़ तो ही गले से लगा देती है। वह फिर भी देखती है उसे प्रियतम नजर आता है। वर्षा के यह पूछने पर कि कहाँ धली सज्ज के, चन्द्रावली उत्तर देती है - * पियारे सो मिलन काज। * पुनः जब वर्षा उससे प्रश्न करती है - * कहाँ तू छड़ी है ? * तो चन्द्रावली उत्तर देती है - * प्यारे ही को यह वाम है। * वह तो कृष्ण की है और किसी वस्तु से उसका अभिप्राय नहीं।

वियोगिनी चन्द्रावली अपने प्रियतम से मिलने के लिए छड़ी ब्याकुल है। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर खोजती फिरती

है। विरह की ज्वाला में वह अपने आपको तप कर मानों प्रिय से मिलनेकी तैयारी कर रही है। वह स्पष्ट शब्दों में अपने अनन्य प्रेम को व्यक्त कर देती है। "प्यारे चाहे गरजो चाहे सरजो इन बातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि बातक ने दूसरा जल भी लिया। इतना ही नहीं वह तो यहाँ तक कह देती है -

घार घवाइन को घटुं और सों
सोर मघाह पुरारन दीजिो
छाड़ि रंकोकन वेद - मुँह
भरि लोपन जाजु निहारन दीजिये ॥ -।

अपने को एकान्त में पा कर चन्द्रावली स्वयं कह उठती है
" प्यारे देखो जो जो तुम्हारे मिलन में सुहारने जान पड़ते थे वह अब भगावने हो गये हैं, जो आँखों से देखने में कला दिखार्ह पड़ता था वही अब भँवर दिखार्ह पड़ता है। "

चन्द्रावली नाटिका का मुख्य विषय प्रेम है। एक गोपी का कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम, आराध्य का आराध्य के प्रति प्रेम और एक प्रेयसी का प्रियतम के प्रति प्रेम। परन्तु इस प्रेम - भवन का निर्माण केवल संयोग पर ही नहीं हुआ है। यह प्रेम विरह की ज्वाला में तप कर निस्वार्थ और पवित्र हो गया है। संयोग तो कहीं कहीं धूमिल किरण के समान दृष्टिगोचर होता है। चन्द्रावली और कृष्ण का प्रेम एक ऐसा प्रेम है जो सांसारिक

प्राणियों के भय से स्क नहीं सकता । प्रेम के इस उदार स्वरूप जो नाटिका में चित्रित किया गया है वह उसके विप्रलम्भ पक्ष से सम्बन्धित है । यही कारण है कि समस्त नाटिका में उषा की मुलाकात और प्रेमियों की छीड़ाई नहीं दीख पड़ती है । बल्कि एक विरहणी की सिसकियाँ और उसके आँसुओं से भरी आँखें दिखाई पड़ती हैं ।

चन्द्रावली नाटिका में वर्णित प्रेम का स्वरूप साधारण प्रेम की अपेक्षा कहीं अधिक महान है । इसमें यदि प्रकलता है तो उसका कारण है त्याग ही भा ना । उनके धारणा का कोई महत्व नहीं । चन्द्रावली प्रेम में अपनी मत्वाला हो जाती है कि जासपास की वस्तुएँ तो दूर रहें उसे अपनी भी लुध - लुध नहीं रहती । वह विरह की अग्नि को अन्दर ही अन्दर छिपाना चाहती है । उसे बाहर प्रकट नहीं होने देती । उसकी सखी ललिता जब उदासी का कारण पूछती है , तब वह उससे भी छिपाने का प्रयत्न करती है । कभी - कभी निराश होने पर भी उसे अपने प्रेम की दृढ़ता पर विश्वास हो उठता है और उसका हृदय फिर जाशा की किरण पाकर प्रसन्न हो उठता है । उसके सम्बन्ध प्रेम और दृढ़ता के कारण ही श्रीकृष्ण को अन्त में कहना पड़ता है -
 " मे तो अपने प्रेम्नि को बिना मोल की दास हूँ । "

भारतेन्दु जी के अनुसार चन्द्रावली के प्रणय का आधार न तो कृष्ण का रूप था न ही उनका गुण - श्रवण कर्पित उसकी कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति थी । चन्द्रावली की अपने आराध्य ॥ कृष्ण ॥ के प्रति अनन्य आस्था थी और इसी भक्ति तथा अनन्य आस्था के कारण ही उनके प्रेम का रंग पीला नहीं होने पाया । भारतेन्दु जी के शब्दों में उनका यह प्रेम इस लोक का भी बन गया । चन्द्रावली श्रीकृष्ण को पति के रूप में मानना चाहती

धी अर्थात् वह प्रेम दाम्पत्य है ।

सारी कथा विरह और मिलन से परिपूर्ण है , जब चन्द्रावली कृष्ण के विरह में मतवाली हो उठती है तो श्रीकृष्ण को योमिनी के भेष में जाना ही पड़ता है । चन्द्रावली की इस दशा को देख कर श्रीकृष्ण ने समस्त रंग उतले मिलने के लिए आतुर होने लगते हैं । उधर चन्द्रावली के भी बापों रंग पहनने लगते हैं। वह कह उठती है - " न जाने क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आप से आप खिंचा जाता है । " इतना ही नहीं वह यहाँ तक कह उठती है - " प्राण नाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आये हो । " बिजली की कड़क होने पर कृष्ण अपने जाली रूप में आते हैं । चन्द्रावली का रोम - रोम प्रसन्नता से झूम उठता है । इस प्रकार जानन्द तथा उल्लास के वातावरण में विरह तथा मिलन की कहानी समाप्त हो जाती है ।

चन्द्रावली नाटिका में रस - विवेक

रस नाटिका के अन्तर में प्रवाहित स्नायवी रस के रूप में होता है और उससे रचना की सुन्दरता और स्वस्थता का पता चलता है । रस नाटिका का प्रतिपाद चन्द्रावली और कृष्ण का प्रेम है । सम्पूर्ण नाटिका में रसि स्थायी भाव की व्याप्ति है और यही भाव उद्दीप्त होकर रस- दशा तक पहुँचता है । इस नाटिका के गद्ग - पद्ग दोनों में शृंगार की स्थिति अधिक है और अन्य रस गौण होकर यदा - कदा अपनी छटा दिखाते हैं । चन्द्रावली में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण है ।

अधिक है । अतः विमलम्भ श्रृंगार इस नाटिका का अंगीरस माना जाता है । चन्द्रावली को गुण - श्रवण, स्वप्न - दर्शन प्रत्यक्ष - दर्शन के कारण पूर्वानुराग होता है, यही वास्तविक प्रेम तक पनपता है । नाटिका में विरह की अवस्था का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

जग जानत कौन है प्रेम - विथा,

केहि सों चरचा या वियोग की कीजिए ।

पुनि को कही मानै कहा सुमुख, कोउ,

क्यों बिन बात की रारहि लीजिए ।

नित जो हरीचंद जू बीते सहे,

वकि है जग क्यों परतीतहि ।

सब पूछत मोन क्यों बैठि रह्यो,

प्रिय प्यारे कहा हमें उत्तर दीजिए ।¹

इस भावना में मन की उद्विग्न अवस्था का मार्मिक रूप दिखाई पड़ता है । विरह चित्रण में काम की दस दशाओं का वर्णन अपनी धरम स्थिति में अभिव्यक्त किया गया है । विमलम्भ श्रृंगार की उत्कट स्थिति इस नाटिका में मिलती है । कवि नायिका के प्रेम और विरह का चित्रण करते हुए भावों की प्रवाहित धारा को रोकना भी नहीं चाहता है । द्वितीय अंक में चन्द्रावली का चित्रण रीतिकालीन नायिका के रूप में हुआ है, क्योंकि कवि विरह चित्रण में भावुकता भरना चाहते थे -

केहि पाप सों पानी न प्रान को,

अटके कित कौन विचार लयो ॥

नहिं जानि परै हरिचंद कछु

विधि ने हम सों हठ कौन ठयो । -¹

प्रेम में संयोग की स्थिति अन्तिम द्वय में आती है ।

पिन् भी अन्तिम स्थिति के कारण महत्वपूर्ण है । इसी के लिए कृष्ण की उपासना करनी पड़ी और तब यह संयोग प्राप्त हुआ ।

पिय तोहि ऐसे बस दरि रागों ।

तुज दुग में दूग दुय तिय में निज हियरें देखि विधि नाखी ।

भक्ति की प्रतिष्ठा आन्तरिक रूप में है यह सिद्धि है, व्यवहार नहीं । भक्ति को मधुरा भक्ति दाम्पत्य भक्ति का रूप मान कर शृंगार में अवस्थित किया जा सकता है । शृंगार - रस **॥विप्रलम्भ शृंगार॥** इस नाटिका का अंगीरस है ।

प्रकृति चित्रण :

भारतेन्दु जी के प्रकृति चित्रण में काव्य तत्त्व अधिक दिखाई देता है । उनके प्रकृति चित्रण में भावुकता का समावेश अधिक है । यह शुद्ध प्रकृति चित्रण नहीं है । मुख्य रूप से वर्षा ऋतु और यमुना छवि में कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है -

देखि घनस्याम घनस्याम की सुरति करि,

जिय में विरह बटा बहरि-बहरि उठे ।

त्यो ही रन्द्रधनुष वगमाल देखि बनमाल,

मोती लर पी पी जिय लहरि-लहरि उठे।²

1- चन्द्रावली नाटिका , पृ० 33

2- चन्द्रावली नाटिका , पृ० 60

वर्षा चित्रण में कवि ने भावनाओं का सुन्दर प्रसार कराया है। जो वर्षा संसार को सुख दे रही है वह विरहिन का हृदय जला रही है। इस चित्रण से कवि की प्रकृति के प्रति भावनाओं का स्पष्ट पता चलता है। यह ऐसी स्थिति का चित्रण है जिसे प्रकृति की सभी वर्षाकालीन रूपरेखा का भावना सम्पन्न चित्रण दिया गया है। कवि ने बाग बगीचे आदि का चित्रण नहीं दिया है। वे प्रकृति को अत्यन्त समीप से नहीं देख पाये हैं इसलिए उनके काव्य में ऐसी स्थिति कम है। यमुना छवि का प्रकृति - चित्रण कवि ने निम्नप्रकार दिया है -

तरनि तनूजा तट समाल तरुवर बहु छाए ।
 झुके पूल तों जल-परजन हित मनुहुं सुहाए ।
 जियो मुरुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा ।
 के प्रनवत जल जानि परम पावन पल लोभा ।
 मनु आत्म बारन तीर को तिमिट सबै छाए रहत ।
 के हरि-सेवा-हितमें रहे निरक्षि नैन मन सुख लहत ।¹

1- चन्द्रावली नाटिका , पृष्ठ संख्या 50

द्वितीय - अध्याय

द्विवेदी युगीन कृष्ण काव्य का स्वरूप विलेखण

- | | | |
|-----|----------------|----------------------------------|
| [क] | उद्यत -शतक | : जगन्नाथ प्रसाद "रत्नाकर" |
| [ख] | छापर | : मैथिली शरण गुप्त |
| [ग] | जयभारत | : मैथिली शरण गुप्त |
| [घ] | जयद्रथ - वध | : मैथिली शरण गुप्त |
| [च] | कृष्णायन | : द्वारिका प्रसाद मिश्र |
| [छ] | जुगलपद वंदन | : कृष्ण मा |
| [ज] | शक्तिर सत्स्य | : नाथ राम लार्मा "शक्तिर" |
| [झ] | प्रिय - प्रवास | : अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिजीव" |

द्वितीय - अध्याय

=====

हिन्दी काव्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी के आगमन से क्रान्ति-कारी परिवर्तन हुआ। इस समय देश में राजनैतिक चेतना का जागरण हो गया था। उत्तम राष्ट्रीय काव्य का विकास हुआ। इसके पूर्व काव्य में अजिब नवीन भावों का प्रादुर्भाव हो गया था, किन्तु भ्रूणार प्रधान कविताओं का ही आधिक्य था। आचार्य द्विवेदी ने इस भावना के विकृत आन्दोलन किया। उन्होंने भ्रूणारी कवियों की कटु आलोचना की और काव्य में पवित्र भावनाओं का समोवेश करने पर बल दिया। उन्होंने कवियों का ध्यान कितने ही नवीन विषयों तथा प्राकृतिक पदार्थों की ओर दिलाया जिसका परिणाम यह हुआ कि रीतिवालीन परम्परा का अन्त हो गया और काव्य में प्रति वृत्त्यात्मक कविताओं का युग आ गया। इस प्रकार कविताओं में भावुकता और कल्पना का अभाव पाया जाता है तथा वर्णन की प्रधानता होने से नीरसता आ जाती है। द्विवेदी जी के इस आन्दोलन से एक लाभ तो अवश्य हुआ कि कविता का क्षेत्र विस्तृत हो गया और समाज सुधार तथा देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ पर्याप्त मात्रा में लिखी जाने लगी। प्रकृति चित्रण की ओर भी कविगण प्रवृत्त हुए। इस समय प्रकृति का चित्रण आत्मन् रूप में किया जाने लगा।

द्विवेदी युग की प्रति वृत्त्यात्मकता के परिणामस्वरूप इस काल में प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ हुईं। काव्य के कला पक्ष में भी महान परिवर्तन हुआ। काव्य भाषा का रूप ब्रज भाषा के स्थान पर लड़ी बोली ने ले लिया। भाषा की व्याकरण संबंधी शुद्धता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा। द्विवेदी का आग्रह संस्कृत गर्भित लिखने की ओर था। उन्होंने स्वयं भी संस्कृतमयी

भाषा लिखने का प्रयत्न किया पर वे उसमें तरसता न ला सके । हरिऔध जी ने प्रियप्रवास में संस्कृत तत्सम पदाकांक्षे पूर्ण ही भाषा अपनाई है । इस युग में कवियों का ध्यान नवीन छन्दों की ओर भी गया । कवित्त और सवैया लगभग छोड़ ही दिये गये । द्विवेदी जी की प्रेरणा से संस्कृत के वर्णवृत्त अपनाये जाने लगे । प्रियप्रवास की रचना वर्णवृत्तों में ही है । उर्दू के छन्दों का धक्का देकर पुआ तथा अन्य मात्रिक छन्दों में भी काव्य रचना की गई ।

द्विवेदी युग में काव्य में जीवन को आगे बढ़ाने की भावना दिखाई पड़ती है । समाज सुधार भी शब्दों में, परन्तु राष्ट्रीयता और देश भक्ति की भावना इस युग के प्राण है । इस युग की विशेषताएँ इस प्रकार थी ।

- 1- इस युग में शृंगारिक भावनाओं का स्थान एतिवृत्त ने ले लिया गद्य और पद्य दोनों में खड़ी बोली का आधिपत्य हो गया ।
- 2- नवीन छन्दों का प्रसार हुआ ।
- 3- कल्याण और भावुकता को धार्मिक आशय नहीं मिला ।
- 4- राष्ट्रीयता और देश-प्रेम से काव्य का उत्थान हुआ । भारत के अतीत गौरव की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ ।
- 5- सामाजिक विषयों से प्रभावित होकर काव्य का निर्माण हुआ ।
- 6- गद्य और पद्य दोनों ही यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुए ।
- 7- इस युग में कविता का आदर्श भी बदला, काव्य अभी तक मनोरंजन के लिए समझा जाता था, अब जीवन के अधिक निकट जाने लगा उसमें जागरण और जनजाणी की भावना अधिक हुई ।

द्वितीय युग के कवियों ने साहित्य जाति और देश की सेवा की और कवि के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा बनाए रखी। अतीत का चित्रण करते हुए कवि वर्तमान को न भूले। सांस्कृतिक रक्षा के साथ-साथ सुधार का भी ध्यान रखा। जाति का अभ्युत्थान चाहते हुए भी देश हित का गान गाया। हिन्दू होते हुए भी वे कवि भारतीय थे। उनमें जातिभेद नहीं, पर साम्प्रदायिकता नहीं थी। सच्चे कवि के समान ये युग के प्रभावित भी हुए और उस पर अपनी छाप लगा दी और इस प्रकार काव्य को उन्नतशील बनाया। इस प्रकार द्वितीय युग का काव्य एक ओर सांस्कृतिक समर्पण, गंभीर और संस्कार की वृत्ति है, वहीं इन कवियों की सहानुभूति, सच्चाई और स्वतन्त्र तथा उदार व्यक्तित्व का संकेत भी है। इसी में इन कवियों की सफलता और महत्ता है।

[क] जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर

जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर ने उच्छकोटि के कृष्ण - काव्य की रचना की है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में उनके "उदव - शतक" का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार "उदव - शतक की मार्मिकता और रचना कौशल भी अद्वितीय है।" - "उदव - शतक का विषय गोपी उदव संवाद है। इस विषय में प्राचीन परिपाटी का पालन करते हुए भी रत्नाकर जी ने नवीनता और मौलिकता का समावेश किया है। आपने गोपियों और कृष्ण दोनों के ही प्रेम में विरह वेदना दिखाई है। स ग्रन्थ में आपने भक्ति-कालीन भावनाओं को रातिकालीन आत्मकारिकता के साथ व्यक्त किया है। उनका

गोपियों में नन्ददास की गोपियों की तार्किकता मिलती है और वैयक्तिक प्रेम निष्ठता की पराकाष्ठा भी । उद्व-शक्त का प्रत्येक छंद एक नवीन विशेषता और मौलिकता लिए हुए है तथा उसकी सरसता एवं माधुर्य अद्भुत हैं । "उद्व-शक्त" कृष्ण - काव्य परम्परा में अपने ढंग का अकेला ही ग्रन्थ है , जिसमें सर्वत्र विषय, भाषा, शैली, कर्तार और रस की छटा दर्शनीय है । उद्व-शक्त का आरम्भ एक नाटकीय स्थिति से होता है । कृष्ण यमुना में स्नान कर रहे हैं :-

"नहात जमुना में जलजात एक देख्यो" जात,
जाके अब उरध अधिक मुरझायो है । " -1

कृष्ण मुरझाये हुए कमल के माध्यम से राधा की विरह दग्ध पिषम दशा की स्मृति से व्याकुल होकर मूर्छित हो जाते हैं । राज राज की व्यस्तता में भूले हुए कृष्ण नये सिरे से स्नेह की नदी में स्नान कर लोटते हैं :-

"कान्ह गए जमुना नहान पे नए सिर सो",
नीके वहाँ नेह की नदी में नहाइ जाए है ।"-2

विरह की अनुभूति की जा सकती है उसका वर्णन करना असम्भव है, वह अकल्पनीय है और उद्व जैसे नीरस हृदय योगी को समझाना और भी दुसाध्य है । परन्तु फिर भी स्वयं को सम्हाल

1- उद्व-शक्त पृ० 1

2- उद्व - शक्त पृ० 2

कर कृष्ण अपनी विरह व्यथा का वर्णन करने का प्रयत्न करते हैं,
परन्तु ऐसा करते ही -

गहबहिर जायौ गरौ भभरि वधानक त्यो
प्रेम परयो वल वुघाय पुतरनि सौ
नैकु कही जैननि, अनेक कही नैनति सौ
रही सही सोऊ कहि दीन्हि दिक्कीनि सौ । -1

स्मृति वियोगानुभूति को गम्भीरता प्रदान करने के साथ-
साथ विरही विरहित को जीवित रहने का आधार प्रदान करती
है । स्मृति की ज्वाला में पड़ कर ही प्रेम का गम्भीर और उदात्त
रूप निरतरता है । प्रेम का यह रूप वियोग में अपने उज्ज्वलतम और
उच्चतम शिखर पर पहुँच जाता है । प्रिय गिलन की आशा को
हृदय में सँजाए विरही अपने विरह व्यथित जीवन को जीता रहता
है । रत्नाकर के कृष्ण भी ब्रज की पूर्व स्मृतियों के कारण व्यथित
हो उड़व से कहते हैं :-

सुधि ब्रज वासिनि, दितैया सुख रासिनि की
उधौ नित एम्को बुलावन को आवती ॥ -2

यह स्मृति उन्हें विरह व्यथित कर देती है :-

उमौ ब्रजवास के बिलास को ध्यान धरयो
निसदिन काटे लो करेजे कसकत है ॥ -3

1- उड़व शतक , पृ० 4

2- वही , पृ० 5

3- वही , पृ० 6

ब्रज की स्मृति कृष्ण को विरह व्याकुल बना देती है और वह अपने वर्तमान राजसी जीवन के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए उदव से कहते हैं :-

मोर के परवो बनि को मुकुट छलीलौ छोरि
कटि मनि मंडित धराध करिहैं कहा ।
कहै रत्नाकर स्यौ मातन सनेही बिनु
षट्तरस व्यञ्जन चवाए करिहैं कहा ।
गोपी-गवाल- बालनि कौ झौकि विरहानल में
हरि सुर-वृन्द की ब्लाह करिहैं कहा ।
प्यारो नाम गोविन्द गुपाल कौ विहाय हाय
ठाकुर झिओल के लखाय दरिहैं कहा ॥ -1

कृष्ण की विरह व्याधा देख उदव उन्हें ज्ञान योग का उपदेश देते हैं । कृष्ण उनके तर्कों का तर्कों द्वारा विरोध न कर केवल एतना कहते हैं कि :-

आवौ एक बार धारि गोकुल गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीत धरि लैहैं हम ।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन - सिर अछिन सौं
उदव लिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥ -2

उदव के ब्रज में पहुँचते ही भक्ति - मिश्रित विरह वेदना का दूसरा पक्ष आरम्भ होता है । उदव कृष्ण का समाचार लाये है, यह जानकर गोपियों की उत्कण्ठा अत्यन्त तीव्र हो जाती है ।

1- उदव - शतक , पृ० 9

2- वही , पृ० 18

इस उत्कण्ठा का अत्यधिक नार्मिक रूप उदव - शक्त में दिया गया है -

उझकि उझकि पद रंजनि के रंजनि पे,
पेछि - पेछि पाती छाती छोहनि छबै लगी ।
हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा
हमको लिख्यो है कहा, जलन सबै लगी । -1

गोपियों की व्याकुल और दीन दशा का उदव पर गहरा प्रभाव पड़ता है । प्रेम और पिरह वेदना के इस दूसरे पक्ष को देख कर अपना सारा ज्ञान ध्यान भूल जाते हैं । परन्तु वे कुछ सम्बल कर जब अपना ज्ञानोपदेश देते हैं, तो गोपियों की मर्म - वेदना का साकार सजीव चित्रांकन किया गया है :-

सुनि सुनि उझ की कह कहानी कान,
कोऊ थहरानी, कोऊ धानहि धिरानी है ।
कौ रत्नाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ जिल्लानी, तिकलानी, विथकानी है । -2

गोपियाँ उदव से सरल प्रश्न करती हैं कि :-

ऊधौ कहौ सुधौ सौ सदिस पहिले तौ यह
प्यारे परदेस ते कबैं को पग पारिहैं ।
बैननि उचारिहैं उरालनो तबे धौ सबै,
स्थान को तनोनो रूप नैननि निहारिहैं ॥ -3

1- उदव - शक्त, पृ० 31

2- वही , पृ० 40

3- वही , पृ० 44

गोपियाँ कुलात्मक विवेक-विलेपन पदों का सहारा लेकर विरहिणी नारियों के लिए ज्ञान योग की अनुपयुक्तता, जटिलता अवलम्बीयता आदि का उद्घाटन करती हुई प्रेम और विराहानुभूति की मधुरता, शुद्धता और उज्ज्वलता का श्रेष्ठ रूप प्रस्तुति करती हैं। वे उद्वेग द्वारा वर्णित निराकार ब्रह्म की अनुपयोगिता सिद्ध करती हुई उद्वेग से पूछती हैं कि -

कर बिनु कैसे गाय झुहिये हमारी वल,
पद बिनु कैसे नाचि धिरकि रिझाव हैं ।
कहे रत्नाकर बदन बिनु कैसे घाड़ि,
माखन, बजाव केनु गोवन घराव हैं । 1-

विरह दुःखदायी होता है। जब दुःखी हृदय को कोई सताता है तो दुःखिया को उत्कण्ठ मजाक उड़ाने में आनन्द आता है। इसी कारण गोपियाँ उद्वेग का मूक बजाव उड़ाती हैं। एतत्का एक अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली उदाहरण है जब उद्वेग गोपियों को प्राणायाम-साधना करने का उपदेश देते हैं तो गोपियाँ कहती हैं :-

औरहु उपाय केते सखज सुढंग उखो,
साँस रोविये को कहा योग ही ढुंग है ।
कुटिल कटारी है, अटारी है उत्तम अति,
जमुना तरंग है तिहारो सत्संग है ॥ -2

रत्नाकर जी का प्रकृति चित्रण अत्यन्त सजीव और सफल है। प्रकृति के आरोपित और स्वतन्त्र दोनों रूपों का सुन्दर तथा

1- उद्वेग-रसक, पृ० 55

2- वही, पृ० 76

मर्मस्पर्शी वर्णन दिया है। अधिकांश प्रकृति का मानवीकरण किया है। उद्धव शतर में प्रकृति चित्रण हृदय प्राप्ती है। बादलों का दृश्य-

झुमि झुमि झुकत उमण्डि नभमण्डल में
झुमि झुमि घहुँवा घुमण्डि घटा घहरें
कहै रत्नाकर त्यों दामिनी दमकि दुरे
दिसि-दिसि सानि दौरि दिव्य छटा छहरें ॥ -1

प्रकृति चित्रण में रत्नाकर जी ने अनुपम सफलता प्राप्त की है। प्रकृति के उग्र तथा सौम्य दोनों रूपों का सुन्दर वर्णन किया है। प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण भी किया है। प्रकृति के आरोपित चित्रणों में अपूर्व सफलता मिली है। कृष्ण के बिना बरसाने में षट् ऋतु किस प्रकार बनी है रहती है, इसका वर्णन कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से दिया है। कान्त न रहने पर भी कान्त बना रहता है :-

विकसित विपिन कसन्तिकाली को रंग
लघियत गोपिन के अंग पियराने में
जेरे वृन्द लसत रत्नाकर वर वारिनि के
पिक की पुकार है क्वाव उमगाने में
छोत पतझार झार तरुनि समूहनि जो
बैठरि बतास लै उसास अधिकाने में
काम विविध वार की कला में मीन मछ कहै
उसौ नित वसत कसन्त बरसाने में । -2

वर्षा न होने पर भी बनी रहती है :-

1- उद्धव - शतक

पृ० ६२

2- उद्धव - शतक

पृ० ६६

रहति सदाई हरिचाई दिह्य घापन में
 उरध उसासि सो झकोर पुरवा की है ।
 पीव - पीव गोपी पीर रटि पुकारिहि है
 सोई रत्नाकरपुकार पपिहा की है ।
 लागी रही नैननि सो नीर की धरी सी
 उठे धित में चमक सी चमक बपला है ।
 विनु घनश्याम धाय धाय ब्रज मण्डल में
 उधौ नित बसत बहार दरसा की है ॥

गोपियाँ उदव से कहती हैं कि हमने तो अपनी नाव
 कृष्ण के मँसवार में डाल दी है और तुम अब उसको शानरूपी
 पवन घला कर डुबोना चाहते हो सो ऐसा मत करो । कृष्ण
 तो कुब्जा का योग पाकर योगी हो गये है और तुम यह बताओ
 कि तुम गुरु हो या शिष्य हो । अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि
 कृष्ण ने सुजान छोकर हमारे प्रेम रूपी खँडल को तिनका विचार
 लिया और तुमको उसको उड़ाने के लिए प्रेषित किया है । तुम
 हमारे प्रेम रूपी पर्वतों को क्या उड़ाओगे । तुम्हें इस कार्य में
 कदापि सफलता नहीं मिलेगी । क्योंकि :-

आये हो पठाते वा छतीसे छलिया के हूते
 वीस किसे उधौ वीर बावन कस्तूँच हूवे
 कहे रत्नाकर प्रपंच न पसारो गाढे
 बाढे पे रहोगे साढे वादस ही जाँच हूवे
 प्रेम ऊ लोग में है लोग ऊठ अठे परयो
 एक हूवे रहे ' क्यों दोऊ हीरा ऊ काच हूवे
 तीन मुन पाँच तत्व बहकि बतावत सो
 जेहँ तीन तेह लिहारी तीन पाँच हूवे ॥ - ।

हे उदव, तुम अनवरत ऐसी बातें क्यों करते हो ? जब हमारे अच्छे दिन नहीं रहे तो ये बुरे दिन भी नहीं रहेंगे । यथा-

धातै रंघि जायेगी न कान्ह की कृपा ते रही
उधो कहिये की कस बातें रह जायगी ।¹

उदव तुम निरन्तर ब्रह्म की रटन लगाये हुए हो । हमारे नेत्रों में कृष्ण को देखो तो ब्रह्म को भूल जाओगे । हमें श्वास रोक कर मरणासन्न/क्यों^{कहना} चाहते हो ? मारने के इसके ऊआवा अनेकानेक उपाय और भी है :-

और हू उपाय केते तहन कूटंग उधो
साँस रोकवे को कहा जोग ही कूटंग है
कुटिल कटारी है अटारी उत्तंग अति
जमुना तरंग है तितहारो संतसंग है ।। - 2

उदव मथुरा लौटना चाहते हैं और गोपियों से कृष्ण के लिए सन्देश माँगते हैं । गोपियाँ स्वयं तो व्यथित है ही, किन्तु कृष्ण को किसी प्रकार दुःखित नहीं केना चाहती हैं, इसलिए उदव से आग्रह करती हैं कि तुमने यहाँ की जो विषय दशा देखी है उसके संबंध में कृष्ण से कुछ भी मत कहना -

नन्द जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कहू
बात कृष्णान भौन हूँ की जनि कीजियो ।। -3

क्योंकि यदि कृष्ण की ब्रज वासियों की इस कृष्ण, दीन

1- उदव शतक , पृ० 63

2- वही , पृ० 76

3- वही , पृ० 104

व्रजा का पता चल गया तो :-

बाँस भरि ऐसे जोर उदास मुख ह्वैहै हाय,

ब्रज दुख बास की न तातै ताँस लीजियो ।¹

वस तुम देखल इतना करना कि -

नाम को बताइ औ जताइ गाम उद्यो वस,

स्थाम सो हमारी राम राम कह दीजियो ।²

ब्रज से मथुरा लौटते समय उदव का सारा ज्ञान - गर्व
तिरोहित हो जाता है । वे ब्रज जासियों द्वारा दिये गये
उपहारों को हाथों में सम्हाले, ब्रज की धूल में शरीर ताने और
जाँघों में अविरल जाँसु घातों मथुरा तोट जाते हैं । कृष्ण से
मिलन का दृश्य प्रेम और निरुद्ध के धर्म रूप को प्रदर्शित करता है -

ब्रज रज रजित सररीर सुध उद्यो को,

घाई कलवीर जधीर ह्वै लपटाए लेत ।

कहे रत्नाकर सु प्रेम मद माते हरि,

थरकति बाँह धामि थहरि थिराए लेत ।।

कीरति कुमारी के दरस रस सब ही की,

छलकनि घाहि पलकनि पुलकाए लेत ।

परन न देत एक बूँद पृथुमी की कोछि,

पोछि पोछि पट निज नेननि लगाए लेत ।।³

1- उदव शतक पृ० 104

2- वही , पृ० 104

3- वही , पृ० 125

उद्धव - शतक एक मनोवैज्ञानिक काव्य है । इसका विरह वर्णन लौकिक धरातल पर और मानवीय सम्बेदना से युक्त होते हुए भी भक्ति परक ही रखा है । यह भक्ति प्रेम मूलक है । इसकी चरम परिणति एकान्त विरहानुभूति में होती है । यह विरह अनुभूति उनकी कृष्ण के प्रति अन्य भक्ति की प्रतीक है ।

[त्व] मैथिलीशरण गुप्त
=====

मैथिलीशरण गुप्त यापि रामभक्त कवि है, किन्तु उन्होंने उच्छकोटि के कृष्ण - काव्य की भी रचना की है । गुप्त जी ने "झापर" काव्य को आत्मोद्गार प्रणाली के रूप में लिखा है । झापर का प्रत्येक पात्र आत्मोद्गार के रूप में अपने विचार प्रकट करता है । इस प्रकार झापर आत्मोद्गार प्रणाली में गीत काव्य है । जिसकी प्रमुख विशेषता स्वगत कथन है । झापर के कथानकों में कोई क्रम नहीं है । वे श्रृंखलाबद्ध नहीं हैं, सभी पात्र श्रीकृष्ण से संबन्धित हैं । वही उनके केन्द्र है । कृष्ण प्रत्येक शरणागत भक्त का उद्धार करने का आश्वासन देते हैं :-

कोई छो, सब धर्म छोड़ तु
आ, बस मेरा शरण धरे
ठर मत, कौन पाप वह, जिससे
मेरे हाथो तु न लरे ॥ - 1

झापर में कृष्ण जीवन के विविध तथ - साथ मानव जीवन का चित्रण किया गया है । झापर का सम्पूर्ण जीवन ही कृष्ण के चरित्र द्वारा उपस्थित किया गया है । कृष्ण के चरित्र को खर के रूप में चित्रित किया गया है । प्रारम्भ में ही गुप्त जी कह देते हैं :-

राम भजन कर पावजन्म तु,
केगु बजा लूँ आज हरे ।
जो सुनना चाहे सो सुन ले,
स्वर ये मेरे भाव भरे ॥ - 2

गुप्त जी के हाथ में कृष्ण चरित्र का पूर्ण विकास दिखाया गया है। कृष्ण - राधा के आदर्श प्रेमी हैं। राधा में सम्पूर्ण कृष्ण के दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। यथा -

राधा में माधव, माधव में
राधा मूर्ति समाई।
यह क्या, यह क्या भ्रम या विभ्रम
दर्शन नहीं अबूरे
एकमूर्ति जाधे में राधा
जाधे में हरि पूरे ॥ - १

राधा से कृष्ण को अथाह प्रेम है। " राधा संग न छेलेगी " इतना सुनने पर उनका मुख स्तब्ध हो जाता है। यशोदा कहती है :-

उसे व्यापती है तो के ल, यही एक भव बाधा
कह दूँगी छेलेगी, बेटे संग न मेरी राधा
भूत जायेगा नाच वृन्द सब, बरी रहेगी बाधा
हुआ तनिक उसका मुख भारी, और रहा तू आधा ॥²

राधा अपने को कृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित कर देती है उनके समर्पण में हमेशा दैन्य भाव की प्रधानता रहती है। यथा -

रहा सहारा इस अन्धी का, कस यह उन्नत आँ हरे।
मग्न अथाह प्रेम सागर में, मेरा मानस लस हरे ॥ - 3
बाधा जड़ता और उन्माद की अवस्था तक पहुँच जाती है।

1- हाथर, पृ० 203

2- हाथर, पृ० 25

3- हाथर, पृ० 15

गोपियों को यह विश्वास है कि यदि राधा को यह मालुम पड़ जाये कि कृष्ण यहाँ नहीं है, तो उनका जीना भी दुर्लभ हो जाये । गोपी उद्व से कहती है -

पर वह भूली रहे आपको
उसको सुख न दिलाना
होगा कठिन अन्यथा उसका
जीना और जिलाना ॥ -1

क्योंकि कृष्ण प्रियोग में राधा अपने अस्तित्व को भूल कर कृष्ण मय हो जाती है । अतः गोपी उद्व को राधा की दशा का ज्ञान कराती हुई कहती है कि -

राधा हरि बन गई हाय यदि हरि राधा बन पाते ।
तो उद्व, मधुवन से उलटे तुम मधुर ही जाते ॥ -2

आपस में राधा लोकोपकारी के रूप में प्राप्त होती है । उन्हें इस बात का दुःख है कि वे कृष्ण की केवल सुख की संगिनी नहीं, दुःख की नहीं । यथा -

सुख की संगिनी रही मैं
अपने उस प्रियतम की ।
क्या क्लिब क्लिब न तनिक भी
बटा न सकी निर्मम की ॥ -3

गुप्त जी ने आपस में गोपियों को नवीन रूप में प्रस्तुत

1- आपस , पृ० 177

2- वही , पृ० 176

3- वही , पृ० 202

किया है । कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियाँ ज्वाला के समान
लगती हैं । उद्व के शब्दों में :-

चन्द्रोदय की वाट लोहती,
तिमिर तार माला सी
एकएक ब्रज बाला बैठी,
जागृक ज्वाला सी ॥ -1

गोपियों का चरित्र चित्रण गुप्त जी ने मनोवैज्ञानिकता
के साथ किया है । वे चारों ओर कृष्ण के ही दर्शन करती हैं ।
गोपियों को सभी पदार्थ कृष्ण मय ही दिखलायी पड़ते हैं । यथा -

कुसुमितता यत् पूर्व स्मृति की
किं फलक धारण है ।
वह आता है यही सोच कर
आ जाते हैं फल भी ।
स्वप्न जाने अब क्या होगा
भारी है पल पल जी ॥ -2

उद्व गोपियों को प्रेम की साक्षात् मूर्ति ही समझते हैं ।
उन्हें प्रत्येक गोपी राधा के समान प्रतीत होती है :-

एक एक तुम सब राधा हो
कहाँ तुम्हारी राधा ।
नहीं दीखती मुझे यहाँ वह
हुई कौन सी राधा ॥ -3

1- बापर , पृ० 172

2- बापर , पृ० 195

3- बापर , पृ० 174

डापर की गोपियों ने कृष्ण पर सर्वस्व समर्पण कर दिया है । उन्हें ज्ञान नहीं चाहिये । वेउद्व से कहती है :-

लौटा ले जावों उद्व
लाये इसे जहाँ से
हम सौ वर्ष जीएंगी
अपनी आशा उर में लेकर ॥ -1

यशोदा कृष्ण को अवतारी सम्झती है इसलिए कृष्ण के प्रति भक्ति भाव रखती है । वे कृष्ण को पाकर स्वयं को धन्य सम्झती है :-

मुक्ति शक्ति ली पत्नी युक्ति से,
मुक्ति भोग मन पाया ।
तेरा दिया राम सब पावे,
देता मेरे पाया ॥ -2

कृष्ण की बाल - छीड़ाओं में यशोदा को लोकोत्तर और अलौकिक रूप दिखाई देता है । कृष्ण के बाल सौन्दर्य का ध्यान करती हुई वे आनन्द में मग्न हो जाती है । यथा -

मेरे श्याम सलौने की है,
मधु से मीठी खोली ।
कुटिल कल्ल वाले की आकृति,
है क्या भोली भाली ॥ -3

1- डापर , पृ० 198

2- वही, पृ० 28

3- वही, पृ० 22

जब कृष्ण मथुरा जाते हैं, तब यशोदा उनके विरह में व्याकुल होती हैं, उनका रोम रोम कृष्ण के लिए रुदन करने लगता है :-

यशोदा बार बार यो भाखे,

हे कोई ब्रज में छिपु हमारी चलत गुपाल छि राखे ।

यशोदा के लिए उद्यव कृष्ण का सन्देश लेकर लाये हैं । वे यशोदा से कहते हैं कि कृष्ण विश्व मंगल की कामना लेकर घर से निकले हैं वे अपना कर्तव्य अवश्य पूर्ण करेंगे । यथा -

निपला है जिस ब्रत को लेकर

माँ तेरा वनमाली ।

पूरा लिये विना घर देखे

लौटे वल्लभाली ॥ - 1

झापर के ग्वाल बाल कृष्ण को नव निर्माण करने वाले नेता तथा रक्षक मानते हैं :-

जरे पलट दी है काया ही

इस वैश्व ने काल की ।

बलिहारी - बलिहारी जय जय

गिरधारी गोपाल की ॥ - 2

कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है , गुप्त जी भी अपने समय के प्रतिनिधि कवि हैं । वे सर्वप्रथम एक भक्त कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं । वे राम और कृष्ण को एक ही शक्ति का अवतार मानते हैं । राम का रूप मर्यादा पुरुषोत्तम है और श्याम

1- झापर , पृ० 165

2- झापर , पृ० 66

के रूप में मनोहरता और मधुरता अधिक है। हापर के कृष्ण के इस मोहक स्वस्व के सामने सभी पात्र आकर्षित हो जाते हैं। गुप्त जी की रचनायें भक्ति तक ही सीमित नहीं हैं, उन्होंने आगे भी अपना विस्तार बढ़ाया है। जो कवि अपने देश काल की प्रत्येक विचारधारा संस्कृति और साहित्यिक पैदाइशों का समन्वय अपने काव्य में करता है वही हमें अपने समय का प्रतिनिधि कवि कहलाता है। वह अपनी अमर प्रेरणा से जन जीवन में प्राण फूँक कर अपने युग को अमर सन्देश देता है। गुप्त जी ऐसे ही प्रतिनिधियों में से एक हैं।

गुप्त जी अपनी रचनाओं में राष्ट्र को नहीं भूल सके हैं। राष्ट्रीयता ही उनका विशेष उद्देश्य है। इसलिए उनके काव्यों में जातीय गौरव की प्रधानता रहती है। उन्होंने "कावा कर्त्ता" लिख कर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व किया है। गुप्त जी के काव्यों में हिन्दू मुसलमानों को समान स्थान नहीं मिल सका है। गुप्त जी के समस्त काव्यों द्वारा सुधार आन्दोलन हिन्दू समाज के प्रति ही अभिव्यक्त हुआ है। गुरु कुलों में यमनों के विरुद्ध भाव व्यक्त किये गये हैं। गुप्त जी के समस्त काव्यों में केन्द्र बिन्दु हिन्दू ही है। वे जातीय कवि पहले हैं और राष्ट्रीय कवि बाद में। उनकी राष्ट्रीय भावना और जातीय भावना में कोई अन्तर नहीं है। बीसवीं सदी जो भारत के इतिहास में पुनरुत्थान कहलाती है, सारे देश में जन साधारण की लहर सी फैल गई थी। भारत की प्राचीन संस्कृति हिन्दू ताने बाने से बनी हुई है। भारत की भूमि हिन्दुओं की अपनी भूमि है। अतः गुप्त जी जातीय कवि ही सर्वप्रथम हैं।

प्राचीन काल की विभिन्न समस्याओं का समाधान गुप्त जी करते हैं। वे प्राचीन मर्यादा समन्वय, मर्यादा प्रेम आदि आदर्श

भावों की पृष्ठभूमि में जाधुनिक समस्याओं का हल खोजते हैं।
 हापर का प्रत्येक पात्र पौराणिक है, जो एक क्रांतिकारी नेता
 के रूप में उपस्थित होता है। विद्युता के प्रसंग में मनोवैज्ञानिक
 विश्लेषण मिलता है। इस कृष्ण का शत्रु के रूप में है और अन्त
 में मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

गुप्त जी हापर में प्राचीन काल की पुनर्व्याख्या ही करना
 चाहते हैं पर राधा के प्रसंग में किसी प्रकार की नवीनता नहीं
 प्राप्त होती है। उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में लगभग 1900 से आज
 तक का चित्रण है। गुप्त जी इस समय की विविध मान्यताओं,
 रीति रिवाजों, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की
 एक दिशा पर पादशों की ओर रक्षित करते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन
 के समस्त परिवर्तन उनकी रचनाओं में मिलते हैं। गांधी तथा
 मार्क्स की विचारधाराओं से भी गुप्त जी नहीं बच सके हैं अर्थात्
 उनकी विचारधारा का गुप्त जी की रचनाओं पर प्रभाव पड़ा है।

हापर में कवि ने विद्युता के माध्यम से नारी जागरण
 आन्दोलन को प्रकट किया है। सामन्त युग की नारी पतिव्रता
 है, बचपन में वह पिता द्वारा रक्षित होती है, योवनावस्था में
 पति द्वारा और वृद्धावस्था में अपने पुत्रों के द्वारा। उसका
 कर्तव्य सेवा है, उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों की कमी नहीं
 है। पति के बिना वह समाज में अशुभ मानी जाती है। नारी
 पर होने वाले अत्याचारों से दुःखी होकर विद्युता कहती है :-

अक्रिवात ही अक्रिवास है ,

नारी के प्रति नर का

नर के तो सो दोष लगा है,

स्थामी है वह घर का ।। - ।

व्यवस्था में परिवर्तन होने पर अर्थात् सह-शिक्षा होने पर नारी को कानून सम्पत्ति में बराबर अधिकार मिल जाने पर समाज के सभी कामों में हाथ बैटाने का अधिकार मिल जाने पर नारी समाज रूपी रथ के एक छद्म के समान काम करती है। अतः पूँजीवाद में नारी को जागरण मिलता है और कवि उसे वाणी देता है। गुप्त जी की समस्त रचनाओं में भारतीय हिन्दू संस्कृति का ही रूप झलकता है। वे भारत की आदि संस्कृति का ही उल्लेख करते हैं। वे भारतीय संस्कृति को फिर अवतरण करने की कामना करने लगते हैं। और वर्तमान जीवन के आधार पर भावी जीवन को सुधारना चाहते हैं -

वर्तमान यह आयोजन है

निज भावी जीवन का

५ अतिरिक्त मिले तो

अधिक लाभ वह जन का ॥ - 1

वे प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को श्रेष्ठ और युग-प्रेरक मानते हैं। अतः वे आर्यों के आदर्श का विवरण देते हैं :-

यह पण्य भूमि प्रसिद्ध है,

इसके निवासी आर्य हैं।

विद्या कला कौशल सभी के,

जो प्रथम आचार्य हैं ॥ - 2

गुप्त जी की अपनी यह मान्यता है कि सभ्यता पश्चिम से पूर्व को नहीं आई, अपितु पूर्व से पश्चिम को गई :-

1- द्वापर , पृ० 41

2- द्वापर , पृ० ४७

है आज पश्चिम में प्रभा जो,

पूर्व से ही है गई । - 1

प्राचीन संस्कृति को वह शक्ति के पक्ष में स्वीकार नहीं करते हैं, वे उसके बुराईयों को ही कूड़ा करकट को साफ़ करना चाहते हैं -

अने युग को हीन समझना,

आत्महीनता होगी ।

सजग राहे हस्तों दुर्बलता

और दीनता होगी ।

जिहा युग में हम हुए हैं वही तो

अने लिए बड़ा है ।

जहां हमारे आगे किता

कर्म - क्षेत्र पड़ा है ॥ - 2

कर्म क्षेत्र पर आगे बढ़ जाने को ही वह सच्चा जीवन मानते हैं । निरन्तर उन्नति करने को ही जीवन समझते हैं । उनका मत है कि जो हमारे पूर्वज कर गये हैं उसी पर संतुष्ट न हो कर उससे आगे कार्य करना चाहिए -

पुरखे यदि नदियाँ तरते थे

तब है सिंधु तरों तुम ॥ - 3

वे नई सृष्टि के निर्माण के लिए आवेश में आकर काल तक को कुनोती दे देते हैं -

1- बापर पृ० 47

2- बापर, पृ० 52

3- बापर, पृ० 49

रही कुतोती आज हमारी
 अधिक क्या कहूँ यम को ।
 नई सृष्टि के लिए प्रलय भी
 प्रेक्षणीय हो हमको ॥ -1

गुप्त जी ने आर्यों के आदर्शों में ही वर्तमान समस्याओं का समाधान दिया है । वे मर्यादा पालन त्याग और कर्मनिष्ठा आदि का सार-तत्त्व प्रदान करते हुए कहते हैं कि मनुष्य को निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये । उसे जीत और हार का ध्यान भूल जाना चाहिए :-

भूल जया जय और भूल कर जीना मरना ।
 हमको निज कर्तव्य मात्र है पालन करना ।-2

गुप्त जी राष्ट्र की उन्नति के लिए भारतीयों को संबोधित करते हैं वे चारों वर्गों को संकेत करते हुए कहते हैं :-

हे ब्राह्मणों फिर पूर्वजों के तुल्य,
 तुम जानी कौ
 क्षत्रिय सुनो जब तो कुशा की,
 कालिका कौ भेंट दो ॥ - 3

भौतिक उन्नति के साथ - साथ आध्यात्मिक उन्नति होना भी आवश्यक है । वे परस्पर में संगठन के लिए त्याग दया आदि को प्रमुखता देते हैं । वे अखंड बन्द कर परम्परा के अनुसरण के विरोधी हैं । वे स्पष्ट कह देते हैं कि यह उपवन हमको पूर्वजों से मिला है ।

1- डापर , पृ० 65

2- डापर , पृ० 44

3- डापर , पृ० 43

आः हमारा कर्तव्य है कि जितनी श्रम जल की धारा से सिंचित करें -

मिला लें उपवन पुरुषों का

यह सौभाग्य हमारा ।

कल ही लेगी या देगी हम

श्रम जल की धारा ॥

सिक्का रोपण काट छाँट से

हाथ सिकोड़ेंगे हम ।

झाड़ और झंझाड़ छोड़ कर

तो क्या लोड़ेंगे हम ॥ -।

गुप्त जी द्वारा में यह स्पष्ट कह देते हैं कि इतिहास और समाज के विकास के प्रति ह्रासवादी दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिए गुप्त जी पुरातनवादी नहीं है । वे जनसाधारण के गौरव को स्वीकार करते हैं, जितनी लोग जनतान्त्रिक दृष्टिकोण बतलाते हैं । वास्तव में जनतान्त्रिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तित्व को स्वातंत्र्य दिया है । वैयक्तिक स्वतन्त्रता नहीं तब ही नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के श्रम को तरीद सकता है तथा श्रम देखने के लिए दूसरों को विवश कर सकता है फिर भी सामान्य व्यक्ति के गौरव गायन में मन्म कवि एक बहुत बड़ा काम करता है । जो दरिद्र हैं, अकिंचन है उसमें मनुष्य गौरव जाग्रत होने से संगठित होकर उपवन के झाड़-झंझाड़ उखाड़ने की प्रेरणा जागती है । वे सभी कवि और कलाकार भ्रम में हैं जो निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करके भी यह आशा करते हैं कि सब सुधी हो जायेंगे और विश्व बन्धुत्व स्थापित हो जायेगा । श्रमिकों के विश्व-बन्धुत्व का अर्थ है कि विश्व के सारे श्रमिकों का राज्य हो, पूँजीपतियों के लिए अर्थ है कि विश्व में कुछ भ्रूठ लोगों का राज्य हो । गुप्त जी अनुशासित

पूँजीवादी जनतान्त्रिक दृष्टिकोण में विश्वास रखते हैं। उनके काव्य का महत्त्व इस तथ्य में है कि वह मनुष्य को निराशा और आत्म दमन नहीं देता, वरन् कर्मण्यता और साहस सिखाता है। जिस मानव में एक उन्माद, एक धुन, कर्म में लवलीनता नहीं है, वह मनुष्य नहीं है :-

न हो एक उन्माद, एक धुन,
 एक लगन यदि जन में ।
 तो उरा अमत्त को लेकर
 है क्या लाभ भुवन में ।
 देव रहा है समझ रहा है,
 किन्तु नहीं कुछ करता ।
 कर्म भूमि का भार रूप वह
 दुब क्यों नहीं मरता ॥ -1

ढापर में वस का अर्थ व्यंग रूप से यवनी शासन से है। हम प्राचीन काव्यों से अपने लिये प्रेरणा ले सकते हैं। अब यवनी शासन नहीं है तो उससे कुछ भी अर्थ लगा सकते हैं। पर रक्षा काल की याद रहे तो क्रान्ति का अर्थ यवनी साम्राज्य का अन्त ही था। पराधीन देश की उन यशोदा माताओं से यह प्रार्थना की है कि अपने अपने पुत्रों को राष्ट्रीय संग्राम के लिए भेज दें :-

अब शिशु नहीं सयाना है वह
 पर तु यद जाने क्या ।
 आया है वह तेरी माँन
 मिसिरी ही जाने क्यों ।
 उसे बाँधना तुझे लगेगा,
 क्या अब भी उ शल से ।
 काट रहा है वह मुजनों के
 भय बन्धन निज बल से ॥ 2

इस प्रकार गुप्त जी एक राष्ट्रीय कवि हैं। लेकिन उनकी राष्ट्रीय भावना और जातीय भावना में अन्तर नहीं है। किसी सीमा तक जातीय भावना ही बढी हुई है। उनके काव्य में यत्र - तत्र जो संघर्ष के झड़ - पूस काट कर उपवन को साफ करने के नारी जागरण आदि प्रगतिशील तत्त्व मिलते हैं, उनका प्रभाव सीमित हो जाता है। गुप्त जी पिछले पचास वर्षों में भारतीय जनसमूह को राष्ट्रीय भावों से अनुप्राणित करते रहे हैं। भाव, भाषा, शैली और विषय प्रत्येक दृष्टि से गुप्त जी प्रतिनिधि कवि हैं।

[ग] जयभारत -

जय भारत काव्य की रचना गुप्त जी ने महाभारत के आधार पर की है। इसमें प्रसंग का कृष्ण कथा भी है। यह ग्रन्थ मानवतावाद से अधिक प्रभावित है और इसी प्रवृत्ति के अनुसार श्रीकृष्ण के मानवीय पक्ष का क्लृप्ति किया गया है। द्रोपदी - धीर - हरण और कृष्ण दूतत्व प्रसंगों में अलौकिकता का आश्रय न लेकर मनोवैज्ञानिकता की प्रतिष्ठा की गई है। कृष्ण के केवल मानव रूप की प्रतिष्ठा के कारण कृष्ण काव्यों में जय-भारत का महत्वपूर्ण स्थान है।

[घ] जयद्रथ - वध -

"जयद्रथ - वध" की कथा महाभारत पर ही आधारित है। चक्रव्यूह में अन्यायपूर्वक अभिमन्यु का वध होने पर अर्जुन सूर्यास्त तक जयद्रथ के वध करने की प्रतिज्ञा करते हैं, या स्वयं प्राण

त्याग देने को कहते हैं । युद्धरत अर्जुन को आकाश में सूर्यास्त जैसा दृश्य दिखाई देता है तब वे निराश हो कर श्रीकृष्ण को अन्तिम प्रणाम करके मरने को प्रस्तुत होते हैं :-

जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है ।

माधव पिता दो बस मुझे अब माधव बाणधार प्रणाम।
-1

अक्षर देख कर जयद्रथ भी अर्जुन को मरने के लिए प्रेरित करता है :-

गोविन्द अब क्या देर है प्रण का समय अब जाता चला
शुभ कार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उत्ता भी भला।
-2

उसी समय श्रीकृष्ण सूर्यास्त न होने का दृश्य दिखा कर अर्जुन को प्रण पूर्ण करने की प्रेरणा देते हैं :-

हे पार्थ प्रण पूरा करो, देखो अभी दिन रोम है ॥⁻³

कृष्ण के आदेश से अर्जुन जयद्रथ का वध कर देते हैं और पाण्डव दल में हर्ष हिलोर उमड़ पड़ती है । युधिष्ठिर हर्षातिरेक भाव - विभोर होकर श्रीकृष्ण की अन्त विभूतियों और शक्तियों का वर्णन करते हैं :-

साक्षात् चराचर नाथ, तुम रखते स्वयं जब हो दया ।
आश्चर्य क्या फिर जो जयद्रथ युद्ध में मारा गया ॥⁴

1- जयद्रथ - वध, पृ० 81 , 2- जयद्रथ वध , पृ० 82

3- जयद्रथ - वध, पृ० 82 , 4- जयद्रथ वध , पृ० 90

डारका प्रसाद मिश्र

=====

[५] कृष्णायन -

मिश्र जी ने कृष्ण - चरित्र पर आधारित कृष्णायन महाकाव्य की रचना की है। उन्होंने कृष्ण के जीवन से संबंधित सम्पूर्ण सामग्री का संकय करके उसे श्रेष्ठ काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। मिश्र जी ने श्रीकृष्ण के चरित्र में आधुनिक युगानुरूप राष्ट्रियता एवं नवचेतना का समावेश करके उन्हें एक जादूई महामानव और लोकनेता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। काव्य प्रतिभा और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से कृष्ण - काव्य में कृष्णायन का महत्वपूर्ण स्थान है। -

कारागार में नरें श्रीकृष्ण का क्या का प्रयत्न श्री मिश्र जी ने कारावास से ही किया है। उन्होंने कृष्ण जीवन के पारस्परिक कथानक में युगानुरूप परिवर्तन करके भारतीय संस्कृति का भव्यतम रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कृष्णायन के संबंध में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि कृष्णायन कृष्ण - चरित्र को आज के जीवन और समस्याओं को सामने रखकर चित्रित करता है। उसमें बीड़ित प्रजा द्वारा विप्लव का चित्र मिलता है। युद्ध से अपने के असफल प्रयत्न और कर्म संस्थापन के लिए उसमें प्रवृत्त होने की मजबूरी और अन्त में जीवन की समस्याओं के हल करने में युद्ध की असफलता और असमर्थता का प्रमाण मिलता है। भगवद् भक्तों को भी कृष्णचन्द्र की अनेक शक्तियाँ मिलती हैं, देशभक्तों को अखण्ड भारत का दर्शन मिलता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखने वालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता प्रेमियों को रसास्वादन।* -

"कृष्णायन" के कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं और मायापति हैं। उनके हृन्द मानमर्दन तथा अशुर - विनाशक कार्य उनकी अलौकिक शक्ति का परिचय देते हैं। वह लीलापति हैं, अतः उनके रामस्त कर्म लीला मात्र हैं। मिथ जी ने कृष्ण की बाल-लीला, गोधारण - लीला, वेणुवादन - लीला तथा रास-लीला आदि सभी सुप्रसिद्ध लीलाओं का वर्णन किया है। उन्होंने कृष्ण को गोपी-वल्लभ तथा राधा - कल्लभ के रूप में भी प्रस्तुत किया है, किन्तु उनमें देश - काल के अनुसार आदर्श मानवीय गुणों का समावेश करके श्री कृष्ण को राष्ट्र नेता महामानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

"कृष्णायन" के कृष्ण और राधा ताद्यात विष्णु और लक्ष्मी के अवतार हैं, अतः उन्हें क्षीर सागर का स्मरण हो आता है।¹ राधा अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा देवकी के आग्रह करने पर उसे यशोदा की गोद में खेलते हुए बाल-कृष्ण का दर्शन भी करा देती है। रासलीला के अन्त में श्रीकृष्ण राधा से माधुर्य भक्ति का पोषण करने को कहते हैं तथा राधा के साथ अपनी अभिन्नता का प्रतिपादन करते हैं। राधा और कृष्ण दोनों ही पक्षों में अनुराग का वर्णन करके कृष्ण के चरित्र को मानवीय महिमा से मण्डित किया गया है। इस प्रकार "कृष्णायन" में राधा कृष्ण की लीलाओं की आलौकिकता की पूर्ण रक्षा करते हुए उन्हें लौकिकता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का अत्यन्त सफल और स्तुत्य प्रयास किया गया है।

1- जन्म कष्ट क्षीर - सिन्धु सुवि आई - कृष्णायन, अक्षरम छण्ड,
पृष्ठ सं० 54

कृष्णा मां

[४] श्री जुगल पद वन्दन

श्रीजुगलपद वन्दन में 132 पद हैं जो पाँच भागों में विभक्त हैं, त्रिनय, प्रेतावली, विरह, स्व माधुरी, समर्पण । इन सभी पदों में मां कृष्ण की आधारणा काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है । उनकी कामना राधा - कृष्ण की विचार स्थली ब्रज-वीथिन में ही बसने की है, जहाँ लोक वेद की मर्यादाओं से निःशंक होकर रत्न जा सक्ता है । यथा -

कबहुँक बसिलौ वा ब्रज वीथिन,
जहाँ हक धर्मिए, ध्येय, श्रेय, सुवि राधा रमन पुनीत्न।
जहाँ विन्मय रस रास घास सब, ज्यथ स्व, रति रीत
जहाँ निरंक, रह लोक वेद सौं, भव जेहन भय भीत्न ॥
जहाँ गति पंगु बुद्धि मन "कृष्णा" सुक विविध शोभ अतीत्न

मां कृष्णा की दृष्टि में वृन्दाजन मायातीत, वेदातीत और वर्णनातीत है :-

लखि मन वृन्दाजन सुख छानी ।
नैद-नैदन कृषभानु नदिनी, जहाँ विहरति मनमानी ॥

मां कृष्णा के काव्य में कृष्ण - काव्य की वेदातीत और लोकातीत परभारा मिलती है :-

रहो रे मन राजा-माधव नाम ।
वेदातीत रूप, रसलीला, अनुपम, ज्यथ ललाम ॥

पद्म जी ने कृष्ण माँ के कृष्ण काव्य के संबंध में लिखा है कि - " कृष्ण माँ के पदों को पढ़ कर मीरा गूर और विद्यापति के पदों का स्मरण हो जाता है । उनकी मधुरता निस्सन्देह जगन्-पद प्रेम की मधुरता है जो शब्दों और भावों को अतिश्रम कर तन्मयता के परास्पर प्रेम को ही मूर्त करने में सफल हुई है । ऐसे उन्मुक्त हृदय के लिखे हुए भक्ति द्रवित पवित्र शब्द कृष्ण ही लिख सकते हैं ।

नाथू राम शर्मा "शंकर"

[ज] शंकर सर्वस्व -

आधुनिक कृष्ण काव्य "शंकर सर्वस्व" नाथू राम शर्मा ने लिखी है। ये हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने देश और समाज को जागृत करने के लिए क्रान्तिकारिणी कविताएँ लिखी हैं। डा० ग्रियर्सन ने महावीर प्रसाद द्विवेदी को एक पत्र में लिखा था कि "शंकर जी की कविताओं को पढ़ कर उन्होंने खड़ी बोली काव्य के विषय में अपनी सम्मति बदल ली है और अब वह मान गए हैं कि खड़ी बोली में भी सुन्दर और सरस कविताएँ हो सकती हैं।" - 1 शंकर जी आभुद्वि थे और महर्षि दयानन्द के अनुयायी थे। रामरक्षा पूर्ति के सम्राट् थे। आर्य समाजी विचार धारा के छोटे हुए भी उन्होंने कृष्ण के संबंध में उत्कृष्ट पवित्रता लिखी है। "पुरुष मुकुन्द है", "प्रकृति राधा है।" - 2 लिख कर शंकर जी ने कृष्ण को पुरुष और राधा को प्रकृति माना है। "कृष्ण कीर्तन" कविता में श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन किया है :-

"कृष्ण देवकी ने जायो ले वसुदेव नंद घर आये।

पालन लगी जसोदा भैया, धरो लठेलो नामकन्हैया

"पूकार सुन लीजिए" समस्या की पूर्ति करते हुए "शंकर" कवि ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है कि वह हमें श्रीजो के "गोरे गूढ बंजन" से मुक्त करें -

1- स० हरिशंकर शर्मा - शंकर सर्वस्व, पृ० 6

2- वही, पृ० 336, 3- वही, पृ० 276 - 277

घेर रहा देश को कुशासन भुजग काली
 दूर इसे उन्नति तरनिजा से कीजिए
 कृष्ण हमें मुक्त करो गोरे गूढ बंधन से
 शंकर से दीनों की पुकार सुन लीजिए ॥ - 1

"गीता ज्ञान कौन भरता " समस्या का समाधान करते
 हुए कवि शंकर ने श्री कृष्ण के महान कार्यों का गान किया है :-

जन्म तो न होता न्याय-नीति पूर्ण कृष्ण का जो ।
 जिष्णु-भीरुता में गीता ज्ञान कौन भरता ॥ - 2

" गोपाल है " समस्या की पूर्ति में शंकर जी ने श्रीकृष्ण
 के अनेक गुणों का वर्णन किया है और उन्हें लोक वल्लभ कहा है -

बैठे है कदम्ब तले बांसुरी बजाते हुए,
 शंकर विलोक लोक -वल्लभ गोपाल है । - 3

"वृषभानु लक्ष्मि को " समस्या की पूर्ति में शंकर जी ने
 श्री कृष्ण को रसिक राज और रसनायक बताया है :-

पायो रसिकराज मन नायो, नमस्सिद्ध लो अनुराग समायो ।
 रस रसनायक ने बरसायो, जेन सिलाय मनोज कली को ॥ - 4

1- शंकर सर्वस्व , पृ० 321

2- वही, पृ० 336

3- वही, पृ० 343

4- वही, पृ० 345

अध्यास सिंह उपाध्याय "हरिऔध"
=====

[५६] प्रियप्रवास -

प्रिय-प्रवास छड़ी बोली हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य है । इस ग्रन्थ का विषय श्रीकृष्ण की मथुरा यात्रा है । [५६] कथासूत्र के अनुसार मथुरा यात्रा के अतिरिक्त श्रीकृष्ण की अन्य ब्रज लीलाओं का भी इसमें यथा स्थान वर्णन है । हरिऔध जी ने प्रिय-प्रवास की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि " मैंने श्री कृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित दिया है, ब्रह्म करके नहीं । अतः प्रिय-प्रवास के कृष्ण ब्रज के नेता और रक्षक है । महामानव है । उनमें लोक - कल्याण की भावना का प्राधान्य है । इस महाकाव्य के मुख्य नायक श्रीकृष्ण और मुख्य नायिका राधा है, जो समाज सेवा स्वार्थ त्याग, विश्व-प्रेम, परोपकार, देश-सेवा और उदारता की समष्टि हैं ।

हरिऔध जी के कृष्ण में महान उद्देश्य से प्रेरित श्रेष्ठ मानव के सभी गुण हैं । उनका चरित्र अनुकरणीय और खन्दनीय है -

कूर्तव आदर्श दिशा नरत्न का
प्रदान की है वशु को मनुष्यता ।
सिखा उन्होंने धित्त की समुच्चता
जना दिया मानव गोप वृन्द को ॥ -2

1- प्रिय - प्रवास अध्यास सिंह उपाध्याय, हरिऔध, पृ० १७६

2- प्रिय - प्रवास, पृ० १७४

प्रिय - प्रवास में कृष्ण शील सौन्दर्य तथा शक्ति की मूर्ति है । उनका एक रूप ग्वाल बाल का है , दूसरा राधा के प्रेमी का तथा तीसरा लोक रक्षक महामानव का । इन सभी रूपों में कृष्ण महान है -

कुसुम शोभित गौरज बीघ से
निकलते ब्रज वल्लभ यों लसै ।
कदन ज्यों करके विशि कालिमा
विलसता नभ नलिनीश है ॥ - 1

प्रिय - प्रवास के श्रीकृष्ण के प्रत्येक कार्य में मानसिक शक्ति का हाथ अधिक है । न कि शारीरिक शक्ति का । कृष्ण का चरित्र नवीन उद्भाक्ता के साथ परिवर्तित किया गया है । उसका मूल प्राचीन है, शाखाएँ नवीन हैं । गोवर्द्धन वाले प्रसंग में :-

लख अपार प्रसाद गिरीन्द्र में
ब्रज वराहिका ने प्रिय पुत्र का
सदल लोग लगे करने लगे ,
रख लिया उँगली पर श्याम ने ॥ - 2

प्रिय - प्रवास के श्री कृष्ण लोक भाक्ता से पूर्ण है । उनका यह रूप आदि से अन्त तक विद्यमान है । कृष्ण समाज के लिए प्रत्येक अवस्था में कूट सहने को तैयार है :-

व्यक्ति से रक्षण सर्व भूत का ,
सहाय होना असहाय जीवका ।
उबारना संकट से स्व जाति का
कृष्ण का सर्वप्रधान धर्म है ॥ - 3

श्रीकृष्ण मानवीय धर्म से ओतप्रोत हैं । उनमें जगत्कल्याण की भावना प्रबल है । उद्योग उनकी कर्तव्यपरायणता का परिचय देते हैं । उनको निरव प्रेम और बन्धुत्व का प्रतीक बता कर उनकी धार्मिक विशेषता का प्रदर्शन करते हैं -

वे जी से है अविन जन के प्राणियों के हितेक्षी ।
प्राणों से है अक्षि उनको विश्व का प्रेम प्यारा ।।

प्रिय - प्रवास के कृष्ण पर गांधीवाद का प्रभाव है । कृष्ण का धर्म स्वभाविक नहीं लो पाया है । कृष्ण अपनी परम्परागत मान्यताओं और दुर्गम भावनाओं के साथ समन्वय करते हुए पूर्ण रूप से आधुनिक युग-धर्म के प्रतीक बन गये हैं ।-

प्रिय - प्रवास की राधा कौमल, प्रेममय तथा कर्तव्य भावना से परिपूर्ण है । राधा को एक सामान्य सामाजिक नारी के रूप में अक्षि किया गया है । राधा रम्पी समाज में बैठे हैं तथा आदर्श रूपा हैं -

यह सुता उनकी अति दिव्य थी
रमणि वृन्द-शिरोमणि राधिका ।
सुखा सौरभ से जिनके सदा,
ब्रज धरा सौरभवान थी ।। -2

राधा समस्त विश्व को कृष्ण में और समस्त विश्व में कृष्ण को देखती है -

पाती हूँ विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राण प्यारा ।
ऐसे भेजे अज्ञ पति को श्याम में है किलोका ।। - 3

1- प्रिय-प्रवास , पृ० १६३

2- प्रिय - प्रवास , पृ० ३६

3- प्रिय - प्रवास , पृ० १५५

राधा में त्याग की गहरी भावना है । वह जगत के हित के लिए कृष्ण वियोग को भी सहन करनेके लिए तत्पर है । वह कृष्ण को लोक कल्याण में संलग्न चुन कर अपने प्रेम को उसमें बाधा स्वरूप नहीं करना चाहती है :-

प्यारे लायें तु-वदन कहे प्यार से गोद लें ।
ठंडे हों, नयन-दुल हों दूर, मे मोद पाऊँ ॥
ए भी है भाव मम उर के और ए भीबहभी है ।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह घाहे न आवें ॥ - 1

राधा यह देख कर खुशी होती है कि तत्त्वतः कृष्ण की तथा परम - प्रभु की भक्तियाँ अभिन्न हैं -

मे होती हूँ सुचित यह जो तत्त्वतः देखती हूँ ।
प्यारे की औ परम - प्रभु की भक्तियाँ है अभिन्ना² ।

प्रिय - प्रवास के कृष्ण और राधा में सेवा - र्त्तव्य - बुद्धि अधिक है । छोटी अवस्था से ही कृष्ण लोक सेवा के शुभ कर्मों में निरत है -

थोड़ी अभी यद्यपि है उनकी अवस्था ।
तो भी नितान्त रत ते शुभ कर्म में है ॥
ऐसा तिलोत्तम वर बोध स्वभाव से ही ।
होता सुनिद यह है, वह है महात्मा ॥ - 3

हरिऔध जी ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि कृष्ण और राधा जैसे नर और नारी भारत माता की गोद में और भी

1- प्रिय - प्रवास . पृ० 243

2- प्रिय - प्रवास . पृ० 244

3- प्रिय - प्रवास . पृ० 247

आवें, किन्तु राधा और कृष्ण की सी विरह घटना कोई न हो :-

सच्चे सनेही अग्नि जन के देश के श्याम जैसे ।
 राधा जैसी सद्य - हृदया क्विव के प्रेम लुब्धी ॥
 हे क्विवात्मा भरत - भुवि के अंक में और आवें ।
 ऐसी व्यापी विरह - घटना किन्तु कोई न होवे ॥
 -।

हरिऔध जी ने युग परिवर्तन किया और अनेकानेक संस्कृत पृत्तों को हिन्दी छन्दों में परिवर्तित कर दिया । तुलसीदास की परम्परा को तोड़ दिया । प्रबन्ध काव्य की रचना करके उन्होंने कवि कर्तव्य भी सिद्ध कर दिया । तत्कालीन धार्मिक सामाजिक राजनैतिक परिवर्तनों का उपाध्याय जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और लोक मंगल की भावना उनके काव्य की पृष्ठभूमि बन गई । वे राधा कृष्ण के लोक कल्याणकारी रूप को लेकर उपस्थित हुए । परन्तु उन के राधा कृष्ण लौकिक ही रहे । उनमें अवतार की भावना की प्रतिष्ठापना दृढ़ नहीं की गई । वे जनता के सेवक सेविका के रूप में सामने आते हैं । देश की राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रबतपात से बचाने के लिए संरक्षण के हेतु अपने प्रबल प्रयास को तोड़ कर संघर्ष में कूद पड़ते हैं । श्री राधा विरह से संतप्त रहती हुई भी समाज सेविका के रूप में अपना जीवन व्ययतीत करती हैं ।

उपाध्याय जी ने प्रत्यक्ष रूप स्वतन्त्रता आन्दोलनों में भाग नहीं लिया, पर उन्होंने राधा कृष्ण के माध्यम से भारतीय सिद्धान्तों का पौषण करते हुए देश - भक्ति का उपदेश दिया । उन पर गांधी जी की कर्तृता और सत्य अहिंसा का बड़ा प्रभाव रहा है । व्यक्तिगत कष्ट सहन करना और लोकसंजनों दो बड़े सिद्धान्तों को सामने रख कर ही हरिऔध जी ने राधा से कहलवाया है :-

जाते जाते जमर पथ में क्लान्त होर दितावे
तो जाके सन्निकट पलान्तियों को मिटाना ।
धीरे धीरे परस करके गात उत्तम खोना ,
सद्गन्धों से श्रमिंत जन को हलितो सा बनाना ॥

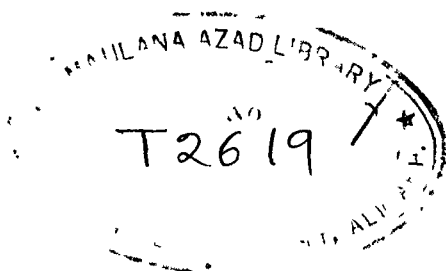
कवि के हृदय में कृष्णा के कारण ही भावुकता रहती है । उपाध्याय जी कृष्णा प्रधान कवि है, उसकी समस्त अभिव्यंजना करने के लिए ही उन्होंने प्रिय - प्रवास की रचना की है । मानवता का परम विकास ही ईश्वरत्व है । इसी की सर्वांग-भूत-हिते रता" कहा गया है । पूजा पाठ जप तप आदि सभी धार्मिक कृत्यों के विषय में उनकी अपनी धारणाएँ बन गई :-

संनस्तों को शरण मकुरा शान्ति संतापितों को
निर्बोधों को सुमति विविधा औषधि पीड़ितों को
पानी देना सुखित जन को अन्न भूखे नरों को,
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अपना संज्ञा है ॥²

उपाध्याय जी ने जीवन दर्शन को नया मोड़ दिया । वे संसार को असार नहीं मानते थे और इसी कारण स्कूल धार्मिक क्रियाओं पर उनका विश्वास नहीं था । समाज और जाति त्याग कर मुक्ति मार्गने वालों के लिए उनके यहाँ कोई स्थान नहीं था ।

1- प्रिय प्रवास पृ० ६५

2- प्रिय प्रवास, पृ० १५६



यही कारण है कि प्रिय - प्रवास की राधा विरह तपता होते हुए भी दीन दुःखियों की सेवा से विरत नहीं होती । इसी प्रकार श्री कृष्ण भी देश समाज और जाति के सेवक हैं । उनका मानवीय हृदय ही धित किया गया है । परम्परानुसार उनके उदय केवल ज्ञान की गहरी छाद कर नहीं पाते, बल्कि श्रीकृष्ण उन्हें इसलिए भेजते हैं कि वे कृष्ण की विवक्षा और व्यस्तता का ज्ञान करा दें महत् कार्य की सिद्धि हेतु साधारण स्वार्थ का त्याग करने का सदिश प्रदान करें ।

इसी प्रकार " रौ रौ चिन्ता सहित दिन को राधिका भी बिताती " परन्तु उनका त्याग छूट सहिष्णुता और सेवा भाव सभी कुछ मानवीय है, क्लौष्टिक नहीं है । उनका शैविक प्रेम विश्वात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है - " मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय - प्राणेश ही में, " " प्यारे की ओर परम प्रभु की भक्तियाँ हैं अकिन्ना " राधा नवधा भक्ति से ऊपर उठ कर विश्व सेवा का नवीन आदर्श लेकर चलने वाली महिला है वे सब लोक संग्रह और लोकाराधना की भावना से पुरित हैं । कृष्ण ने कहलाया है :-

जी से पाया जगत् हित और लोक सेवा जिसे है ।
प्यारा सच्चा अग्नि तन में आत्मत्यागी नहीं है ।।

हरिओष जी की प्रारम्भिक रचनाओं में श्रीकृष्ण के अवरीय रूप को प्रदर्शित किया गया है । परन्तु उन्होंने अपनी मानसिक स्थिति के अनुसार उन पर मानवता का आरोप किया है । इस प्रकार उपाध्याय जी के मन में नवीनता का प्रभाव था , परन्तु वे परम्परागत भावना का विरोध नहीं कर पा रहे थे । समयानुसार जब उनकी दृष्टि व्यापक हुई तो वे शास्त्र के सिद्धान्तों का मनन

भी करने लगे उसी का परिणाम प्रिय - प्रवास है । उन्होंने यह माना कि ईश्वर एक देशीय नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाय कि भारत में भगवान का अवतार लेने वाले गौपाल ही ईश्वर है, शेष न कहीं कोई अवतार हुआ है और न कोई देवी देवता है । उनकी व्यापक दृष्टि में सर्वत्र ही उस ब्रह्म का प्रकाश है और वही समस्त विश्व के प्राणियों की आत्मा में रम रहा है, अतएव लोकाराध्या के द्वारा भी उस विश्वात्मा की उपासना की जा सकती है । मानव प्राणी समूह में सर्वश्रेष्ठ है उसी में मानवता का चरम विकास ईश्वरत्व की प्राप्ति है ।

विश्व का प्रत्येक प्राणी मानवीय और वन्दनीय है । मानवता का निर्देशन ए। वात्सोन्नति का मूल है । इसी के अनुसार उपाध्याय जी ने ज्योत्तिक गुणों से हट कर लौकिक गुणों की प्रतिष्ठा की । उनके नायक महामानव के रूप में सामने लाये और तभी उपाध्याय जी ने कहा था :-

ताराओं में तिमिर हर में, वह्निविपुलता में,
नाना रत्नों विविध मणियों में विभा है उसी की ।
पृथ्वी पानी पवन नभ में, पादपों में, लघुओं में,
वे पाती हैं प्रथित प्रभुता विश्व में व्याप्त की ही
हज्ज आत्मा परम हित की, मुक्ति की उपमा है,
काँछा होती विश्वात्मा उससे आत्म उत्सर्ग की ही ॥¹

इसीलिए राधा को श्रीकृष्ण केवल अपने ही नहीं दिखाई देते है वह सब में श्रीकृष्ण के दर्शन करती हैं । विश्वात्मा और विश्व भक्ति के सिद्धान्त को लेकर प्रिय - प्रवास की रचना की गई है उनके नायक और नायिका को मानवीय गुणों से विभूषित किया गया है ।

उपाध्याय जी परम जास्तिक एवं भगवद् भक्त थे । प्रिय - प्रवास में उपाध्याय जी ने अपने कथा नायक श्रीकृष्ण को कहीं भी अति मानव की ओर झुसर नहीं होने दिया है । उनके श्रीकृष्ण अत्यन्त अलौकिक और दिव्य कार्य करते हुए भी मानव हृदय के लिए अस्वभाविक और असम्भव सी दिगार्ह देने वाली धटनाओं को एक सर्वथा स्वाभाविक और किंवदन्ताय रूप प्रदान किया है । इसका एक मात्र कारण यह भी है कि आज का वैज्ञानिक युग विज्ञान के विरुद्ध सुनने का अभ्यासी नहीं है । इसलिए प्रत्येक कवि अपने चरित्र नायक को यथा सम्भव अधिक से अधिक स्वाभाविक रूप प्रदान करता है । उपाध्याय जी ने भी इस युग की भावना के अनुरूप अपने चरित्र नायक कृष्ण को भी एक दिव्य महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है । कृष्ण को अपना छोट देव नहीं माना है । अतः उन्होंने कृष्ण को पारब्रह्म के स्थान पर एक अलौकिक पथ प्रदर्शक नेता या महापुरुष के रूप में ही अंकित किया है । उन्होंने भक्ति - भावना से ही नहीं बल्कि सुधार की प्रवृत्ति से ही प्रेरित होकर प्रिय-प्रवास की रचना की है ।

हरिऔध जी द्वारा चित्रित राधा कृष्ण का प्रेम भव्य एवं उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण है । श्रीकृष्ण जब जब राधा का स्मरण करते हैं तब तब राधा उन्हें प्रेम की मूर्ति दिगार्ह देती है :-

“प्राणाधारे परम सरले प्रेम की मूर्ति राधे ” ।

राधा का ध्यान आते ही कृष्ण बहुत विचलित होते हैं । इधर जैसे कृष्ण की दशा है उधर राधा की भी वैसी ही दशा है । कृष्ण से मिलने के लिए राधा बहुत इच्छुक है । राधा यह विचार करती है कि यदि मेरे पक्षियों की भाँति पंख होते तो उड़कर मैं

कृष्ण के पास पहुँच जाती। राधा पक्षियों को आकाश में उड़ता हुआ देख कर अपनी उत्कण्ठा व्यक्त करती है :-

जो मैं कोई विहंग उड़ता देखती व्योम में हूँ ।
तो उत्कण्ठा विद्या चित्त में आज भी रोषती हूँ ॥
होते मेरे अधल तन में पक्ष जो पक्षियों से ।
तो यों ही मैं समुद्र उड़ती श्याम के पास जाती ॥¹

मथुरा पहुँच कर कृष्ण राजनीति के कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं। इतने व्यस्त हो जाते हैं कि इच्छा होने पर भी ब्रज नहीं पहुँच पाते हैं। एक ओर राधा कृष्ण का सामीप्य पाना चाहती है उस ओर कृष्ण के लोक हित जारी कार्यों में बाध भी नहीं बनना चाहती हैं। राधा कहती है :-

पूरा पूरा परम प्रिय का मरम मैं पूछती हूँ ।
है जो बाधा क्या उर में जानती भी उसे हूँ ।
यत्नों जार में प्रतिदिन अतः महा लयता हूँ ।
तो भी देती जरह अन्य वात्सल्ये व्यथा हूँ ॥²

प्रातः काल पक्षी आकाश में कूँजते हैं। विहंगों की ध्वनि सुनकर कृष्ण की मुरली की धुन का स्मरण हो उठता है। राधा कहती है :-

स्वयं प्रातः सरस सुर से कूँजते हैं पक्ष ।
प्यारी प्यारी मधुर धुनियाँ मत्त हो है सुनाते ।
मैं पाती हूँ मधुर ध्वनि में कूँजे में खगों के ।
मीठी तान परम प्रिय मोहिनी बैरिणा की ॥³

1. प्रिय प्रवास, पृ० 286

2. प्रिय प्रवास, पृ० 286

3. प्रिय प्रवास, पृ० 287

इधर राधा वियोगाग्नि में लपटती रहती है, तो उधर कृष्ण भी राधा के वियोग में जातुर है। कृष्ण कहते हैं कि विधाता ने दो प्रेमी हृदयों को क्यों विलग कर दिया है :-

जो दो प्यारे हृदय मिल के एक हो गये हैं ।
क्यों विधाता ने विलग उनके मात को यों किया है ।

हरिकौशल जी द्वारा चित्रित राधा कृष्ण के मध्य अन्य प्रेम है। परन्तु दोनों ही कर्तव्य के प्रति पूर्ण जागरूक हैं। राधा अन्य प्रेमिका होने पर भी लक्ष्मी समाप्त सेवा के कार्यों में रत रहती है। राधा को जाने से भी बहुत दूर दोन दुष्टियों का ध्यान है। यह कार्य राधा के लिए उत्था शक्य है। परन्तु अपने इस कार्य को प्रधानता देते हुए राधा पवन से कहती है :-

तेरे जैसे मृदु पवन से सर्वथा शान्ति काभी ।
कोई रोगी पथिक पथ में जो कहीं भी पड़ा हो ॥
तो तू मेरे सकल दुख को भूल के वीर हो के ।
खोना सारा क्लृप्त उनका शान्ति सदागि होना ॥¹

हरिकौशल जी की राधा उदार है। कृष्ण भी मथुरा में लोकसेवा के कार्य में रत हो जाते हैं। राधा और कृष्ण दोनों कर्तव्य के प्रति सजग तथा जागरूक हैं। राधा और कृष्ण के प्रेम को क्षुद्र धरातल से उठा कर विश्व प्रेम में परिणित कर दिया है। राधा उद्वेग से कहती है कि कृष्ण से प्रीति करके दो लाभ हुए। प्रथम ईश्वर के कर्म कृष्ण में ही हो गये। द्वितीय सारे विश्व में कृष्ण को व्याप्त समझ कर समस्त विश्व के प्रति प्रेम का भाव जाग्रत हो गया :-

1 - प्रिय पुतास, पृ० 283

2 - प्रिय पुतास, पृ० 66

व्यापी है विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा ।
यों ही मैं जगति पति को श्याम में है विलोका ॥¹

राधा और कृष्ण का प्रेम सर्वत्र उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण है । इस प्रकार प्रिय प्रवास में मौलिकता और नवीनता का समावेश किया गया है ।

हरिऔध जी प्रकृति के अन्य उपासक थे । उन्होंने मानव प्रकृति और मानवेत्तर प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है । मानव प्रकृति के बहिरंग और अन्तरंग दोनों का उनके काव्य में चित्रण किया गया है । प्रिय-प्रवास में राधा और कृष्ण के रूप का चित्रण मानव प्रकृति के बहिरंग पर आधारित है । मानव प्रकृति के अन्तरंग का भी कवि ने छड़ा सजीव वर्णन किया है । प्रकृति के विराट रूप ने परम व्यापक एवं माधुरी के साथ इनके हृदय में पूर्णतः तादात्म्य स्थापित कर लिया । वह उसमें रम जाते हैं । प्रकृति के विविध रूपों का मनोहारी वर्णन प्रिय-प्रवास में मिलता है ।

प्रकृति का समवेदनापूर्ण स्वरूप ही मानव के संतप्त हृदय को शीतलता प्रदान कर सकता है, परन्तु उसका भी अतिक्रमण नहीं होना चाहिए । प्रकृति विषदा में प्रेरणा प्रदान करती है । यही कारण है कि राधा को कृष्ण की छवि प्रकृति के नाना रूपों में दिखाई देती है और उन दृश्यों को देख कर ही उसके मन का दुखी भाव तिरोहित हो गया :-

कंजों का या उदित विधु का देखा सौन्दर्य आँखों ।
या कान्नों से कण करके गम मीठा खगों का ॥
मैं होती थी व्यथित अब हूँ शान्ति सानन्द वाली ।
प्यारे के पाँव, मुख, मुत्सीभाव जैसा उन्हें था ॥²

1 - प्रिय प्रवास, पृ० 295

2 - प्रिय प्रवास, पृ० 298

मानव जब विरह की वेदना अथवा भावावेश में अपने अस्तित्व का तथा चेतन जैस्न भाव के चिन्नेद को भूल कर जब चेतन वस्तुओं का आश्रय लेकर अपने भाव व्यक्त करता है तब उसके भावों का उत्कर्ष उसे प्रकृति के तत्त्वों के साथ आत्मीयता का अनुभव कराने लगते हैं । प्रिय - प्रवास में हरिऔध जी की पवन दूत। प्रसंग की इसी प्रकार की है । राधा पवन को अपनी बहन मान कर उससे बड़े उन्मुक्त हृदय से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करती है । वे पवन से सम्बन्ध स्थापित करके अपनी पीड़ा, अपनी वेदना से कुछ आँसों में मुक्ति पाने का प्रयास करती हैं । उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण काव्य की प्राचीन परिपाटी है । जब मानवीय भावनाओं को प्रकृति उद्दीप्त करने का कार्य करती है, वहाँ उद्दीपन में प्रकृति की छटा के दर्शन होते हैं । यथा -

धारा वही लल वती जमुना वही है ।

हे कुन्ज वैभव वही वन भू वही है ॥

हे पुष्प पल्लव पल्लव वही जग भू वही है ।

ये है, वही न कस्ययाम विनात ज्ञाते ॥ -

हिन्दी में प्रकृति चित्रण की परम्परा भावोद्दीपन के रूप में ही अंकित रही है । प्रकृति चित्रण के समय हरिऔध जी ने प्रकृति की नाना वस्तुओं, पक्षियों के कार्य-कलाप का उनकी चोटियों का स्वाभाविक रूप में वर्णन किया है । उसमें किसी प्रकार की मानवीकरण की भावना, उपमा, उत्प्रेक्षा की सहायता से आरोप नहीं किया गया है । प्रिय - प्रवास का नवम सर्ग इस प्रकार के प्रकृति चित्रण का सुन्दर उदाहरण है । उद्यम के उद्गायन के समय कवि ने जग के मार्ग में बढ़ने वाले प्रकृति की स्व राशि का बड़ी

सहृदयता से वर्णन किया है ।

प्रकृति के नाना तत्त्वों से और उसके अनेक कार्य कलापों से मनुष्य उपदेश ग्रहण करता है । प्रिय - प्रवास में हरिऔध जी ने प्रकृति के इसी रूप का वर्णन किया है । कृष्ण गोपों के साथ वन में भ्रमण कर रहे हैं । वे उन्हें प्रकृति के भिन्न दृश्यों को दिखाकर उनसे जीवन यात्रा के लिए उपदेश ग्रहण करने की बात समझाते हैं । गोपों को कृष्ण बड़ी सहृदयता से बताते हैं कि तंगार की कोई वस्तु रहस्य से शून्य नहीं है । मनुष्य तृण तल से शिक्षा ग्रहण कर सकता है । मनुष्य को संकीर्ण विचार का नहीं होना चाहिए । उदार वृत्ति से जो प्रकृति का अवलोकन करता है । उसे प्रकृति के तत्त्वों से अनेक प्रकार के उपदेश प्राप्त हो सकते हैं । कवि अपने काव्य में अंकारों का प्रयोग भावों और विचारों की व्यञ्जना देने के लिए करते हैं । कहीं कहीं प्रकृति चित्रण भी अंकारों के प्रयोग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । इस रूप में प्रकृति चित्रण की प्रणाली प्राचीन है । प्रिय - प्रवास में प्रकृति को सांकेतिक रूप में चित्रित किया गया है । उपमा अंकार के रूप में प्रकृति का चित्रण -

नवल सुन्दर श्याम शरीर की,
सजल नीरद सी कामत थी ।

प्रकृति यदि विरह के उद्दीपन रूप में सहायक रही है तो वियोग से तप्त हृदय के भावों को दूर करने की क्षमता भी रखती है । प्रकृति की मनोहारी छटा प्रिय - प्रवास के गोप - गोपिकाओं के विरह की चोट की मरहम पट्टी करती हुई दीख पड़ती है वे उसके दृश्यों से अपने कष्ट को भूल कर शान्ति का, सुख का अनुभव करते हैं । जब कवि प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोपण कर देता है ,

तो वह मानव के समान अजीब और प्राणवान हो जाती है ।
प्रकृति चित्रण का यह रूप आधुनिक छायावादी कविता की देन
है । हरिऔध जी ने प्रकृति के तत्वों का मानवी रूप में भी वर्णन
किया है । प्रकृति के अन्त रूप में जब कवि उस परम ब्रह्म को
रहस्य मय स्वरूप की खोज करता है तो वहाँ पर प्रकृति के रहस्य-
वादी रूप के वर्णन होते हैं । रहस्यवादी के रूप में प्रकृति वर्णन
का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है :-

रहस्य से शून्य न एक पत्र है ।
न जिव में व्यर्थ बना तृण है ॥¹

प्रकृति को द्विती रूप में चित्रित किया गया है । राधा
अनी विरह कहानी मन को सुनाती हुई कहती है कि वह उनके
सन्देश को कृष्ण तक पहुँचा दे :-

मे रो रो कर प्रिय विरह से बाकली हो रही हूँ ।
लाटे मेरी सब दुःख-दया श्याम को तू सुना दे ॥²

प्रकृति को जिव की प्रत्येक वस्तु में समाहित देखा प्रकृति
के प्रति सर्ववादी दृष्टिकोण का परिचायक है । प्रकृति के प्रति
इस प्रकार की आस्था छायावादी कवियों में दिखाई देती है ।
हरिऔध जी ने प्रकृति को अनौकिक शक्ति का घर बताया हुए कहा
है :-

सोताओं ने जिह्वा इसका मर्म यों है बताया ।
सारे प्राणी अखिल जग के मूर्तियाँ है उसी की ॥³

जब प्रकृति के विविध उपादानों का प्रयोग किसी परिस्थिति
के प्रतीक के रूप में किया जाता है तो प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति
वर्णन की शोभा बढ़ती है :-

1. प्रिय प्रणाम, पृ० १७५
2. प्रिय प्रणाम, पृ० ६४
3. प्रिय प्रणाम, पृ० १७७

बहु भयंकर थी यह यामिनी किलपते ब्रज भूतल के लिए ।
तिमिर में जिसके उसका शशि बहु कला युत होकर खोझला ॥

इस प्रकार हरिऔध जी के साहित्य में प्रकृति चित्रण के जितने भिन्न रूप मिलते हैं । सम्भवतः बहुत कम हिन्दी के काव्यों में मिलेंगे । प्रिय-प्रवास के तेरह सर्ग ऐसे हैं जो प्रकृति वर्णन से प्रारम्भ होते हैं । हरिऔध जी का हृदय प्रकृति के चित्रण में खड़ी तल्लीनता के साथ रमता है । प्रिय-प्रवास में प्रकृति वर्णन में चित्रण कौशल की सुन्दर अभिव्यक्ति की है । इस प्रकार प्रकृति - चित्रण के द्वारा मानव सेवा और लोकसंरक्षणा की पुष्टि की है । पवन दूती प्रसंग में यही भावना राधा ने व्यक्त की है ।

प्यारे प्यारे तू दिसल्यों को अभी जो छिलाना ।
तो हो जाना मृदुल दत्तनी टूटने दे न पावें ॥
शाखा पत्रों सहित जब तू कैलि में मग्न हो तो ।
थोड़ा सा भी न दुख पहुँचे शावकों को छगी के ॥

उपाध्याय जी का प्रकृति चित्रण केवल प्रकृति - चित्रण मात्र ही नहीं है और न उसमें उपदेशात्मकता ही पायी जाती है । उनकी प्रकृति धीरा, कोमलता और सदृश नारी के समान है , जिसमें भारतीयता भरी पड़ी है ।

1 प्रियप्रवास, पृ० २०

2 वही पृ० ८६

तृतीय - अध्याय

छायावाद तथा छायावादोत्तर कृष्ण काव्य का

स्वरूप विश्लेषण

॥क॥ कृष्णिया - धर्मवीर भारती

॥ख॥ रश्मि रथी - रामधारी सिंह "दिनकर"

॥ग॥ महादेवी वर्मा

॥घ॥ सुमित्रानन्दन पन्त

॥च॥ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

तृतीय - अध्याय

छायावादी - कृष्ण काव्य

द्विवेदी युग के अन्तर हिन्दी काव्य में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ जिसे छायावादी युग कहते हैं। आचार्य द्विवेदी ने शृंगार का विरोध करके इतिवृत्तात्मक को जन्म दिया था जिससे काव्य के क्षेत्र में नीरसता और शृङ्खला आने लगी थी। कविगण रीतिकालीन परिपाटी पर शृंगार की अभिव्यक्ति कर नहीं सकते थे, पर साथ ही रीति की शाश्वत भावना प्रस्तुत हुए बिना रह भी नहीं सकती थी। इसलिए उसका विस्फोट छायावादी काव्य के रूप में हुआ। इसके अतिरिक्त इस समय अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी चांगला साहित्य के माध्यम से और कहीं सीधे भी हिन्दी काव्य पर पड़ा। शेली, कीट्स, वाल्स आदि की रोमांटिक स्पष्टतावाद की लहरों ने भी विधा को प्रभावित किया और रवीन्द्र की गीतांजलि ने नोबिल पुरस्कार ने भी कवियों को प्रोत्साहित किया। उनकी प्रेममयी कल्पनाएँ जिन कविताओं के द्वारा अभिव्यक्त हुई, उनमें रीतिकालीन कविताओं जैसी स्पष्टता नहीं थी, वे नवीन शैली में नवीन प्रकार से अभिव्यक्त हुई थी। इन्हीं कविताओं को छायावाद की संज्ञा दी गई। आरम्भ में छायावाद नाम उपहास के रूप में रखा गया था, किन्तु बाद में छायावादी कवियों ने उसे स्वीकार कर लिया और वह वास्तविक नाम बन गया।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया और अत्यन्त चित्रमयी भाषा में नाना

मनोरम रूप सक्ति एवं भाव सक्ति उपस्थित किए । इनकी अभिव्यक्तियों में लाक्षणिकता एवं मधुरिम कल्पना का प्रयोग पाया जाता है । वर्ण्य विषय की दृष्टि से कवि किसी अज्ञात प्रिय के प्रेमोन्माद में विह्वल होकर उससे मिलने के लिए व्याकुल होता है, कभी जले पदघापो की ध्वनि सुनता है और अभी तम के परदे में उससे जाने की आदुल प्रतीक्षा में तल्लीन होकर नीरव गान गाने लगता है । इस प्रकार की भाव - पद्धति एवं अभिव्यक्तियाँ शैली को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे अभिव्यक्तियों की एक विशेष प्रणाली माना है । छायावाद की परिभाषा विद्वानों ने इस प्रकार की है :-

" परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की परमात्मा में, यही छायावाद है । " -1

" छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है । " -2

छायावादी कवि के काव्य में दुःखवाद और निराशा दोनों ही पाये जाते हैं । छायावाद का कवि एक काल्पनिक लोक बना कर उसी में रहना चाहता है और जीवन के वास्तविक संघर्षों से उसे कोई रुचि नहीं होती है । यही कारण है कि वह राजनैतिक क्षेत्र से तटस्थ रहता है । मानव को सुन्दरतम माना है । मानव का स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्वीकार किया है । समाज का निर्माण व्यक्ति के लिए होता है इसलिए वह समाज का दास नहीं है । व्यक्ति को प्रधानता देने के कारण मानव हृदय की सूक्ष्म भावनाओं

1- डा० राम कुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २१५

2- डा० नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० नगेन्द्र की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ० २११

ते अभिव्यक्त किया गया है। छायावाद के कवि भगवान या राजा की प्रशंसा में गीत गाने की अपेक्षा अपने कष्टों और प्रणय निवेदन को अधिक महत्व देते हैं। प्रकृति को आलम्बन के रूप में चित्रित किया गया और उसका मानवीकरण करते हुए उसे सप्राण और समवेदनशील भी माना है। छायावाद के कवि प्रकृति के साथ अपना आत्मिक सम्बन्ध मानते हैं। छायावादी कवियों में भारतीय और यूरोपीय दोनों प्रकार की आध्यात्मिकता दिखाई देती है। एन्हें, श्रीजी जीवन ज्ञान से प्रभावित कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि ने, स्वामी विवेकानन्द के विचारों ने और श्रीजी कवियों की भाव प्रवणता ने प्रेरणा प्रदान की। परिणामस्वरूप छायावादी कवि की आध्यात्मिकता कहीं तो भक्तिपूर्ण दिखाई देती है और कहीं अद्वैतवाद के रूप में तथा कहीं कहीं पर उसमें जायसी और कबीर जैसा रहस्यवाद झलकता है। इसके कारण ही छायावाद को समझने में असमर्थ रहते हैं। छायावादी कवि बन्धनों के प्रति असन्तुष्ट हैं, वे स्वच्छन्दता के पक्षपाती हैं। पराजयवादी अथवा पलायनवादी ५
 ऐसा सीमा तक हैं कि संसार का नाश चाहने लगते हैं। उनका विश्वास है कि वर्तमान सृष्टि के विनाश के पश्चात् जो दूसरा संसार बसेगा वह सुखद और स्वच्छन्द प्रेम से परिपूर्ण होगा।

रामधारी सिंह "दिनकर"
 =====

रश्मि-रश्मी :

कविता का जन्म मनुष्य की चेतना के अन्दर निहित सुरक्षा की भावना से हुआ है। इसीलिए आदिम कविता प्रार्थनाओं के रूप में मनुष्य के भीतर से प्रस्फुटित हुई। काव्य का सम्बन्ध मनुष्य

की हितचिन्ता से जुड़ा हुआ है। सभ्यता के प्रारम्भिक युग में जब प्रकृति के रहस्य मनुष्य के लिए अज्ञात थे और वह अधिकांश में अपने जीवित रहने के लिए प्रकृति की कृपा पर निर्भर था, तब उसने प्रकृति के अनेक उपादानों की प्रार्थना की। अग्नि, सूर्य और जल की प्रार्थनाएँ मनुष्य की आदिम प्रार्थनाओं में से हैं। इन्हीं प्राकृतिक उपादानों की जीवित कल्पना के भीतर से देवताओं का उदय हुआ और फिर सर्वशक्तिमान ईश्वर का। आगे चलकर मनुष्य जाति की सुरक्षा, हित चिन्ता में सहयोग देने वाले साहसिक, ऐतिहासिक महापुरुषों को भी इन्हीं देवताओं और ईश्वर की कोटि में रख दिया और उनके गुणगान किये। यही से काव्य में चरित काव्यों का उदय हुआ। रश्मि-रथी दिनकर जी का चरित्र काव्य है।

रश्मि रथी कर्ण के चरित्र को आधार बना कर ही लिखा गया है। कवि का उद्देश्य कर्ण के चरित्र के शील पक्ष, मैत्री भाव तथा शौर्य का चित्रण करना है। मैत्री और कृतज्ञता मनुष्य जाति के वे गुण हैं जिनके आधार पर उसने अपनी सुरक्षा की है और सभ्यता, संस्कृति की हजारों वर्षों की यात्रा में निरन्तर आगे बढ़ता गया है। कर्ण महाभारत का अद्भुत चरित्र है। अनेक प्रकार की घटनाओं मानसिक स्थितियों के मध्य कर्ण का चरित्र बनता है। वह एक सामाजिक विडम्बना का शिकार है, विडम्बना का अर्थ होता है, ऐसी कारुणिक बुराई जो मनुष्य के जीवन पर घातक प्रभाव डालती है। इस रूप में कर्ण सामाजिक रचना पर एक प्रश्न चिन्ह खड़ा कर देता है कि क्या महारथी होने, शौर्य प्रदर्शन के लिए, सैन्य संचालन के लिए उच्च कुल में उत्पन्न होना आवश्यक है? क्योंकि वीरता में, शौर्य में, तेजस्विता में कर्ण महाभारत

के किसी भी प्रमुख चरित्र से कम नहीं है। लेकिन क्योंकि वह सूत-पुत्र के रूप में विख्यात है। वह कुन्ती द्वारा परित्यक्त, उसका प्रथम पुत्र है, क्योंकि वह राजा नहीं है, इसलिए उसे राजकुमारों से शौर्य प्रदर्शन में प्रतिस्पर्धिता का कोई अधिकार नहीं है।

अपनी जाति और जन्म पर जाकेसों के कारण कर्ण के चरित्र में एक हीनता ग्रन्थि की भावना पैदा हो जाती है। द्रोणाचार्य उसे शिष्य बनाने से हन्कार कर देते हैं, भीष्म उसे अर्ध - रथी की संज्ञा देते हैं। अपमान और क्षोभ की इसी प्रतिक्रिया में कर्ण एक आत्मनिर्भर मनुष्य बनने की चेष्टा करता है, क्योंकि उसमें एक निरन्तर जोश और तेजस्विता विद्यमान है, इसलिए वह इन गुणों को विकास रूप में बढ़ाता है। दूसरी ओर उच्च वर्णों द्वारा किये जाने वाले निरन्तर अपमान और षडयन्त्र कर्ण को एक दुर्भावना युक्त कलनायक या बुरे चरित्र के रूप में नहीं बदलते। इसके स्थान पर वह सत्ता और सम्पत्ति की अन्तिम निरर्थकता से परिचित होता है और सब कुछ दान में दे देने को तत्पर रहता है। लोभ, क्रोध, सत्ताकामिता, ऐश्वर्य की आकांक्षा उसे नहीं थी। वह दीन, दुखियों, समाज के दलित वर्गों के भेता के रूप में उपस्थित होता है। वह युद्ध अपने लिए नहीं लड़ता बल्कि अपने मित्र दुर्योधन के लिए लड़ता है जिसने भरत सभा में क्षममान से उसे बचाया था। दुर्योधन द्वारा दिये गये सम्मान को कर्ण जीवन भर नहीं भुलाता है और कृष्ण, कुन्ती या भीष्म किसी की प्रार्थना पर ध्यान नहीं देता है। मैत्री की ऐसी अडिग निष्ठा के जो कर्ण चरित्र में मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी इसी अडिग निष्ठा के कारण कर्ण पाण्डवों के विरुद्ध लड़ता है। कर्ण के चरित्र के इन्हीं सदगुणों और महान मानवीय मूल्यों को आधार बना कर रश्मि रथी का रचना कवि ने की है।

रश्मि रथी का प्रारम्भ कर्ण के शौर्य प्रदर्शन की घटना से होता है। द्रोणाचार्य द्वारा पाण्डव और कौरव राजकुमारों की शास्त्र शिक्षा पूरी हो जाने के बाद उनके प्रदर्शन का सार्वजनिक आयोजन हस्तिनापुर में होता है। इसी अवसर पर अघनाक कर्ण प्रकट होता है और अपने शस्त्र संचालन कौशल से सारी सभा को चकित कर दिया। पाण्डवों और विशेष कर अर्जुन के सारे प्रदर्शन कर्ण के प्रदर्शन के आगे फीके पड़ जाते हैं। और गुरु द्रोणाचार्य के साथ ही राजकुल के सभी बड़े भीष्म, द्रुपदाचार्य उदास और निस्तेज हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि कर्ण ने सम्पूर्ण राजकुल का गौरव नष्ट कर दिया। लेकिन कर्ण इस ओर से निश्चिन्त अर्जुन को द्रुपद युद्ध के लिए ललकारता है। अपमान की प्रथम घटना का आरम्भ यहीं से होता है। जब द्रुपदाचार्य उसके जन्म और जाति के बारे में प्रश्न करके उसकी धनौती को अस्वीकार कर देते हैं तो कर्ण हतप्रभ हो जाता है और उसके अन्दर एक गहरा क्षोभ, ग्लानि, अपमान की उसके स्वभाव और चरित्र में एक विकैली घटुता का जन्म होता है।

कवि ने वर्णाश्रम धर्म से उत्पन्न जहर, शासक वर्गों की झूठी उच्चता की भावना से किये जाने वाले जन - अपमान का संकित किया है। इस प्रकार एक पुरातन कथा पर आधारित होते हुए भी यह काव्य अपने अन्दर आधुनिक भारतीय समाज की कमजोरियों पर परीक्ष रूप से प्रहार करता है। कवि यह बताना चाहता है कि इस प्रकार की छद्म उच्चता की भावना से चिया गया व्यवहार कितना घातक होता है। वह एक व्यक्ति को किस प्रकार हठी बना सकता है जिससे शान्ति की सम्भावनाओं को छोड़ कर विनाश अपना घर बनाने लगता है। जातिवाद और वर्णाश्रम धर्म की

की इसी संकीर्णता पर कवि ने प्रहार किया है। इस प्रकार हिंमि रथी में जातिवाद है जिसे से पांडित आज के भारतीय समाज के लिए अत्यन्त रूप से एक निदान प्रस्तुत किया गया है। किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा, उसके शौर्य शील, स्वाभाविक योग्यता और उसके असाधारण व्यक्तित्व का सम्मान केवल उसके कुल, गोत्र, जन्म आदि के आधार पर नहीं दिया जाना चाहिए। बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके सामाजिक व्यवहार के आधार पर होना चाहिए। इस प्रकार यह रचना एक प्रकार के भावात्मक सामाजिक समन्वय का रक्ति देती है और इस रूप में उसे एक उच्च कोटि का काव्य कहा जा सकता है। कर्ण के सम्बन्ध में कहा गया है :-

रौजस्वी सम्मान औजसे नहीं गोत्र बतला के
पाते हैं जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के ।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर सीधे कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक ॥

यही नहीं, जातिवाद और कुल की झूठी उच्चता के अन्दर छिपे गलत घराबों का भी पर्दापनश कवि ने कर्ण से झूठ से करवाया है :-

मस्तक ऊँचा किये जाति का नाम लिये फलते हो,
मगर अल में, शोषण के बल से सुख में पलते हो ।
अवम जातियों से थर थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से माँ ग लिया करते हो ऊँठे का दान ॥²

अपनी आत्मा पर बिठाये गये इसी कलंक, इसी शोषण का बदला लेने का मिश्रण कर्ण करता है। उसके मन का इन्द्र यह

1- शशिभरणी, पृ० 7

2- वही, पृ० 8

नहीं है कि वह नीच जाति में पैदा हुआ है, बल्कि यह है कि वह भी उच्चकुलोद्भव है। लेकिन नियति का, सामाजिक, संकीर्णता का वह यह नहीं रिद्ध कर सकता कि वह उच्च कुल में पैदा हुआ है। सुत पुत्र कहला कर भी वह इन्द्र उसके मन में साधारण जनों के प्रति द्वेष या घृणा का भाव नहीं जगाता। बल्कि वह उन्हें सच्चे मन से प्यार करने लगता है। वह उसके लिए सब कुछ न्योछावर करने को सदा तत्पर रहता है। वह उनकी पीड़ा से परिचित होता है। इसीलिए उसमें सत्ता या सम्पत्ति का मोह नहीं जागता और वह निस्वार्थ भाव से सदा कर्म में तत्पर रहता है। प्रथम सर्ग में कवि उसके इसी घोर मानसक जन्तुइन्द्र को प्रस्तुत करता है। दर असल इन प्रथम सर्ग का उपयोग कवि ने एक पृष्ठभूमि के रूप में किया। जिस पर राखर के वर्णों के चित्र की महानताओं को आगे उजागर कर सके। छात्रों में उसके चरित्र के द्वारे पर दी गई दुनियाद पड़ती है। जब दुर्योधन उसके सिर पर मुकुट रख कर उसे जंग देव का राजा घोषित करता है। कर्ण का अत्यन्त सविद्वन्शील हृदय दुर्योधन के इस कार्य से गल कर पानी हो जाता है। उसे लगता है कि उसके अपने भाई नहीं तो क्या, दुर्योधन तो उसे अपमान से बचाने के लिए तत्पर है। इसी विन्दु से कर्ण के अन्दर एक कठोर, अडिम ईर्ष्या-निश्चयता जन्म लेती है। दुर्योधन के द्वारा दिये गये इस सम्मान को वह अपनी जान देकर भी निभाता है।

लेकिन कर्ण जानता है कि द्रोणाचार्य की अपने शिष्य अर्जुन पर विशेष कृपा है। उसे वे हारता हुआ नहीं देख सकते। इसके अलावा वह द्रोणाचार्य की उत्कट जाति भावना से भी परिचित है, जिन्होंने अज्ञेय गुरु रहते हुए भी एकलव्य का अंगूठा कटवा लिया था। अतः गुरु द्रोण से उसे कोई भी आज्ञा नहीं है। ऐसी

स्थिति में कर्ण क्षत्रिय - कर्ण - विनाशक भगवान परशुराम को अपना गुरु बनाने और उनसे शस्त्र विद्या अर्जित करने के उद्देश्य से उनके आश्रम में जाया है। इसका लक्ष्य सिर्फ एक है - अर्जुन से अपने अपमान का बदला लेना। शास्त्र कर्ण के इस खोलेज्ज को उजागर कर देता है कि वीरत्त और शौर्य केवल उन्हीं की धरोहर नहीं है। उन साधारण भी जाने तात्स, परिश्रम और लग्न के फल पर उसे प्राप्त पर तबस्ता है और जसाधारण के इस शौर्य का सम्मान उसे मिलना ही चाहिए। इस प्रकार कर्ण की प्रतिशोध भावना राजतन्त्र की निरक्षरता के खिलाफ एक तरह के नैतिक विद्रोह से उपजी है। कर्ण अपने इस सम्पूर्ण विद्रोह को सार्थक करने के लिए वह परशुराम को अपना गुरु बना लेता है, लेकिन वहाँ वह इसलिए शापग्रस्त होता है, क्योंकि वह क्षत्रिय है। इस प्रकार कर्ण जातिवाद की इस विचित्र सी विडम्बना का शिकार होता है। क्षत्रियों के मध्य वह इसलिए अपमानित होता है कि वह क्षत्रिय नहीं है। इस प्रकार क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों ही उसे जाति और कुल के नाम पर अपमानित करते हैं।

प्रथम और द्वितीय सर्गों की इसी दुहरी योजना से गुजरता हुआ कर्ण तीसरे सर्ग में अपने निर्णय, अपनी मैत्री और सहयोग भावना, सदाचार से युक्त मानवीय जीवन के प्रति अपनी निष्ठा तथा निस्वार्थ आत्मसंलिदान की दसोटी तर घटने के लिए प्रस्तुत होता है। तीसरे सर्ग में पाण्डवों के दूत कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास गये हैं और खाली हाथ लौटते हैं। दुर्योधन मार्ग में पर पाँच ग्राम भी पाण्डवों को देने के लिए तैयार नहीं होता और उन्हें कृष्ण को गिरफ्तार करना चाहता है। कृष्ण अपना विराट रूप दिखला कर सभी को भयभीत करके चल देते हैं। लौटते हुए कर्ण

उन्हें मिल जाता है और वे उसे आदरपूर्वक हाथ पकड़ कर अपने रथ पर बैठा लेते हैं । इस प्रसंग में कवि ने अपनी मार्मिक कल्पना से अधिक काम लिया है । कूटनीतिक कृष्ण, कर्ण के जन्म की किथा सुनकर, पाण्डवों से उसके रक्त सम्बन्ध का जिक्र कर पक्ष बदलने पर जोर देते हैं । उनका हयाल है कि कर्ण के बिना दुर्योधन लड़ाई मोल नहीं ले सक्ता और युद्ध ज न्य विनाश रूप जायगा । दूसरी ओर कृष्ण कर्ण को पाण्डवों में सबसे बड़ा होने दे, कारण राज्याभिषेक द्वारा उसे सम्राट बनाने का लालच भी देते हैं और साथ ही यह भी कि इस तरह वह जातिहीनता के ऊँचे से बाहर अपने दाँत को भी धो सकेगा । जाति और जन्म का कलंक कृष्ण द्वारा उठाये जाने पर वह फिर आन्तरिक अपमान से जलने लगता है । अपनी माता कुन्ती के प्रति भी कृष्ण के सामने अपने लोभ को व्यक्त करना नहीं भूलता :-

मैं और मोघ रो छिन, दान,
राजाओं के सम्मुख मलीन
जब रोज आदर पाता था ,
कह शूद्र पुकारा जाता था ।

पत्थर की छाती पटी नहीं
कुन्ती तब भी तो कटी नहीं ।।

इस प्रकार माँ, भाई -बन्धु , परिजन, समाज सभी पर कटु व्यंग करता हुआ कर्ण कृष्ण के रक्त सम्बन्ध प्रलोभन का जबाब दे । कृष्ण द्वारा फैला सया दूसरा प्रलोभन है - राज्य पद, जिसके लिये दुर्योधन का साथ छोड़ना आवश्यक है । कृष्ण के इस प्रस्ताव का भी कर्ण विरोध करता है । और इस प्रकार अपना अटल निर्णय और अपनी उज्ज्वल सम्बन्धिता प्रकट करता है :-

अपना विकास अक्रूर देव
 सारे समाज के क्रूर देव
 भीतर जब टूट चुका था मन
 आ गया अवानक दुर्योधन

निष्ठुर पवित्र अनुराग लिए

मेरा समस्त सोभाग्य लिए

मित्रता बड़ा अनमोल रत्न,
 कब इसे तोल सकता है कन
 धरती दी तो है बड़ा विराट
 दास्य कन के पुण्ड्र हाथ

उसको भी न्योछावर कर दूँ ।

दुरूपति के चरणों पर रख दूँ ।। - ।

कृष्ण के प्रलोभन और उनकी कूटनीति से बचकर निकल आने के बाद भी कर्ण की परीक्षा सत्तम नहीं होती । युद्ध को अक्रयम्भावी जानकर और कर्ण के भयानक शौर्य से परिचित होने के कारण पाण्डव शिविर उसके खिलाफ षडयन्त्रों का जाल बिछाना शुरू करता है । कर्ण की दानवीरता का नाजायब फायदा उठाते हुए अपने पुत्र की रक्षा के लिए इन्द्र कर्ण से उसका जन्मजात कवच दुण्डल माँग लेते हैं । कर्ण इस छल को समझते हुए भी इसका शिकार बनता है । यह घटना कर्ण के चरित्र के उदात्त पक्ष को उद्घाटित करती है । वह छल छद्मभाषी गन्धी कूटनीति में विश्वास नहीं रखता । वह दूसरों के कपट का जबाब एक विमल उदारता से देता है । इन्द्र कर्ण के इस निर्णय से गलानि से गड़ जारो है और इसी गल नि भावना से उबरने के लिए

कर्ण को एकहत्ती नाम अस्त्र देते हैं। चतुर्थ सर्ग में दानवीर कर्ण की महिमा का बड़ा ही भव्य चित्रण कवि ने किया है। कर्ण के वल यश की साधारण आकांक्षा से दान नहीं देता। बल्कि वह सम्पत्ति की निरर्थकता को बहुत गहराई से समझता है। उसने अपना समस्त वज्रन साधारण गरीबों के वाय रत्न रत्न बित्ताया है और उनकी विपन्नता का वल साक्षी है। अतः राज्य पद पाने पर भी उसमें दम्भ या लोभ छू तक नहीं गया है। वह तिर्फ दूतरो को दे देने के लिए अर्पित करता है।

पंचम सर्ग में कर्ण के ऊपर अब तक का सबसे कारगर हथियार पाण्डव शिविर हस्तेमाल करता है। कुन्ती स्वयं कर्ण के पास दल बदलने और अपने भाइयों के पक्ष में जाने का आग्रह करने आती है। कर्ण के लिए यह सबसे बड़ी परीक्षा है। जिस माता ने लोक लाज के भय से पैदा जैसे ही उसे बला दिया था वही आज उसे माता के अधिकार के साथ दुर्योधन से तोड़ने आयी है। कर्ण के जीवन की सारी कुण्ठा, सारे अपमान, सारी ग्लानि और कर्क की आग से जलते रहने का कारण यही माँ कुन्ती ही तो है। यही आज उसके सामने खड़ी है प्रार्थना की मुद्रा में, लेकिन इस भावात्मक आघात को भी कर्ण झेल जाता है। उसका एकनिष्ठ चरित्र टूटता नहीं, अनिर्णय की राज उत्तरी घमक को हूँ ठँक नहीं पाती। यद्यपि कर्ण के मन में भीतर एक चाहकर उठ रहा है, लेकिन वह उसे दबा देता है। वह जानता है कि पीछे लौटना अब सम्भव नहीं है। वह अन्त में कुन्ती से कह देता है कि चाहे कृष्ण भले ही अर्जुन को छोड़ दे, पर कर्ण दुर्योधन के साथ कभी भी विश्वासघात नहीं कर सकता। लेकिन कुन्ती भी खाली हाथ नहीं लौटती है। वह अर्जुन के अज्ञात शत्रु धारों पाण्डवों की सुरक्षा का आशवासन लेकर

नोटती है :-

जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं
जो भी निरीह है, निन्दित है, निर्जन है
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु, सहचर है ।
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है ॥ - ।

इस प्रकार कर्ण अपना पक्ष स्पष्ट कर देता है । वह राज्य और विजय की गलत महत्वाकांक्षाओं से पीड़ित नहीं है । रणक्षेत्र में उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं है । लेकिन उसकी पक्षधरता है । उसकी पक्षधरता है दीनों, दलितों, असाधारणों, प्रताड़ित और परित्यक्त लोगों तथा शोषितों के प्रति । कर्ण उन्हीं का मित्र है । उसे यश, सम्मान और राजपद का प्रलोभन अपनी मैत्री और पक्षधरता से छिगा नहीं सकता । दलितों के साथ सहयोग एवं सहभाक्ता और जीवन की उदार, उच्चकोटि की नैतिकता उसके चरित्र में कूट दृढ़तर भरती है । कर्ण के रक्त रित्ति पक्ष को जनताधारण और राज्य के बल एवं भावात्मक समन्वय से उत्प्रेरित कहा जा सकता है ।

जडयन्त्रों, परीक्षाओं और प्रलोभनों की इन्हीं स्थितियों के बीच से अपने निर्णय में अडिग, अपनी उदारता और गरिमा में उज्ज्वल कर्ण कुस्क्षेत्र के रणस्थल में उतरता है । यद्यपि यहां भीष्म शर शौया पर लेटे हुए उसे एक बार फिर युद्ध से विरत होने की सलाह देते हैं । लेकिन कर्ण किम्वत्ता पूर्वक उनकी सलाह को अस्वीकार कर देता है और कहता है कि अब युद्ध भूमि के निर्णय

।- रश्मि रथी ।, पृ० ६१

के अलावा और कोई भी निर्णय सम्भव नहीं है। छठेसर्ग की कथा में अचि दा उद्देश्य कर्ण के इसी अद्भुत शौर्य का अग्रान करना है और साथ ही वह सातवें सर्ग में वर्णित कर्ण की उज्ज्वल मृत्यु की पृष्ठभूमि भी यहीं तैयार करता है। कृष्ण फिर उसके विरुद्ध एक कूटनीतिक चाल चलते हैं और अर्जुन की सुरक्षा के लिए लड़ाई के मैदान में भीम के पुत्र घटोत्कच को उतार देते हैं। उसके द्वारा भयंकर विनाश लीला शुरू करने पर दुर्योधन के जाग्रह पर कर्ण अत्यन्त चिन्मन से इन्द्र से प्राप्त एतनी का प्रयोग करता है। घटोत्कच तो मारा जाता है, लेकिन कर्ण ने राव सिता के ना भुजाओं के अब कोई भी मृत्युपूर्ण अस्त्र नहीं रह जाता। इसीलिए पाण्डव शिविर में जबकि कृष्ण घटोत्कच की मृत्यु पर हैस रहे हैं, कौरव शिविर में विजयी कर्ण उदास और चिन्म बैठा है -

हारी हुई पाण्डव वम्र में हैस रहे भगवान थे,
पर जीत कर भी कर्ण के हारे हुए से प्राण थे।
क्या सत्य ही, यथ के लिए, वेवल नहीं कल चाहिए,
हस बुद्धि का भी घात, कुछ छल-छद्म, - कौशल चाहिए।।

हस बुद्धि का छल - छद्म - कौशल यह सक्ति है जो कर्ण जैसे तेजस्वी, ईमानदार और शौर्यवान योद्धा को उसकी उज्ज्वल किन्तु कारुणिक मोत तक ले जाता है, क्योंकि युद्ध बुनियादी तौर पर एक अनिति का नाम है। नीति की दुहाई दोनों पक्ष देते हैं, लेकिन जब युद्ध शुरू हो जाता है तो नैतिक घोषणाएँ ताक पर धरी रह जाती है। क्योंकि युद्ध का अना तर्क होता है। कर्ण जैसा योद्धा भी इसी निष्पक्ष पर पहुँचता है कि युद्ध कौशल के अलावा युद्ध जीतने के लिए-----

1- रश्मि रथी, 2063

लिए अलग तरह की कूटनीति भी आवश्यक है। लेकिन यह कूटनीति कर्ण को स्वीकार नहीं है, क्योंकि उसे सिर्फ लड़ना है, जीतना उसकी मीत्वाचक्षुष के अन्दर नहीं आता। कर्ण अपने धर्म के धारा युद्ध की रक्षा को रक्षा और जर्जरता की ओर रक्षित करता है लेकिन युद्ध से विरक्त होकर नहीं, बल्कि उसमें शामिल होकर, उसे अत्यन्त वीरतापूर्वक लड़कर। लेकिन उसके लड़ने का कोई गलत उद्देश्य नहीं था। उसे अस्तिनापुर का राजा नहीं चाहिए था। कृष्ण के इस कथन का हि कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है फल की चिन्ता मत करो कर्ण से बड़ा तात्वी कर्ण ही है। वह अपने उद्देश्यों में स्पष्ट है। असफलताएं और षडयन्त्र उसे विचलित नहीं करते। वह कहता है :-

सुयोधन पूत या अश्विनी ही था,
प्रतापी वीर मेरा मित्र ही था।
किया मेने वही सत्कर्म था जो,
निभाया मित्रता का कर्म था जो ॥ -।

इसीलिए कर्ण के इस पवित्र निस्वार्थ और उज्ज्वल आत्म-बलिदान से महाभारत में एक सन्नाटा हा जाता है। लड़ाई का अख्यान पास नजर आने लगता है। स्वयं श्रीकृष्ण भी इसे पाण्डव दल की विजय नहीं मानते। युधिष्ठिर की अपार प्रसन्नता को रोकते हुए वे कहते हैं कि विजय ही पुरुषार्थ नहीं है। विजयी से भी महान शीलवान होना है और कर्ण यद्यपि पराजित हुआ लेकिन उस का शील वहीं भी उणिडत नहीं हुआ। कृष्ण स्वयं कर्ण की मृत्यु से अत्यन्त क्लान्त हो जाते हैं, क्योंकि अन्दर से कहीं न कहीं कर्ण की दो टूक निस्वार्थ सन्धाई और अन्तिम शौर्य कृष्ण को भी

प्रभावित और उदात्त कर जाते हैं। वह भी जानते हैं कि कर्म के साथ महाभारत में दुर्व्यवहार हुआ है। ऐसा उदात्त अमान्य हुआ है, हमारा उसी साथ व्यापकता हुई है। वह ऋषयों का शिखर होता रहा है। लेकिन हम - हम को त्वाँई के तर्ज में उसे अभी भी ऐसा नहीं दिया है। उसने एक साधा सत्त युद्ध कहा है, उसने अभी वह दिया नहीं, पु भी नहीं दिया। उसने अपने के सम्पूर्ण रूप में दूसरों को दे दिया था। कर्षण होने के साथ ही वह सत्तन वर्णित भी था। तब, प्रती, सत्यवादी, जो सम्मान के गुण उसने विस्तार दे। प्रती को श्रवण करके कृष्ण उसने धर्म की व्याख्या करते हुए करते हैं :-

पुद्गल का भिन्न पद धाम दिया का
 ली - सत्तन - सुखरूप दिया का
 का कृष्ण के तर्ज दान का दान का
 पु भी प्रती का पदम्पु पुद्गल का
 सत्तन कर द्रोण का में भविष्य भरिये
 भित्तमह की तरह सम्मान हरिने
 मुक्तता की क्या कैसा उठा है,
 प्रती के व्योमि का कैसा उठा है ॥ - १

इस प्रकार रहित रही उदात्त और अच्छी भवनाओं का साधन है। वे उदात्त और अच्छी भवनाएँ कर्म के धर्म द्वारा ही प्रकटित होती हैं, क्योंकि वह धारे अमान्य और उनके सत्तन करके की जीवन की वैदिक व्योमि पर वरा उत्तमता है, उसका शीत उसकी निष्कारण, उसका अन्त निमीभव, उत्साहकरण के इति

उसकी अन्य निष्ठा उसे एक महामानव की कोटि तक उठा देते हैं। उसमें संकय कृत्ति का पूर्णतया अभाव है। इसीलिए कर्ण का चरित्र जनता और शासन के मध्य एक प्रकार के भावात्मक समन्वय का प्रतीक है। उसके पूर्णतया सदाचारी तपस्वी जीवन के प्रति स्वयं कृष्ण को भी शंका नहीं है। वह छल छद्म से रहित मानवीयता के सभी उदात्त गुणों से विभूषित एक शौर्यवान् पुरुष है, उसके अन्दर एक वैराग्य हर जगह झलक उठता है। वह भारत माता का आकाशों से पीड़ित, राज्य या मुट् का चिन्ता नहीं है। उसके उस सदाचारी चरित्र, उन्नत मानवीय जीवन के प्रति उसकी अटल निष्ठा को उसके शत्रु और मित्र दोनों ही समान रूप से जानते हैं। वह युद्ध की निरर्थकता का भी चिन्ता देता है - क्योंकि वह जानता है कि जब एक बार युद्ध आरम्भ हो जाता है तो बड़ी से बड़ी नैतिक घोषणाएँ भी व्यर्थ हो जाती हैं, क्योंकि युद्ध का अपना एक अलग तर्क होता है। इस दृष्टि से - कर्ण का चरित्र युद्ध की अन्तर्राष्ट्रीय निरर्थकता की घोषणा करता है। इस प्रकार यह काव्य एक गहरी अन्तर्राष्ट्रीय चेतना में संयुक्त काव्य है। लेकिन युद्ध की इस निरर्थकता को जानते हुए कर्ण युद्ध की अनिवार्यता को भी समझता है। इसीलिए अर्जुन के समान माण्डवीय रहकर यह रथ के पिछले भाग में युद्ध विमुक्त होकर कभी नहीं बैठता। लेकिन वह युद्ध इसलिए भी नहीं लड़ता कि वह राज्य का बंटवारा चाहता है, बल्कि इसलिए लड़ता है कि राज्य और भारत एक संपूर्ण इकाई के रूप में सुरक्षित रहे, चाहे विजय किसी की भी क्यों न हो। वह राष्ट्रीय एकता का समर्थक है। कृष्ण ने उसे मनुजता का नया नेता कहा है।

रथ में कृष्ण एक प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया गया है। महाभारत के कृष्ण का चरित्र एक दार्शनिक का ही चरित्र

एक दार्शनिक का ही चरित्र नहीं है । वे पूरे समर के समायोजक के रूप में हमारे सामने आते हैं । यद्यपि वे शस्त्र नहीं उठाते हैं फिर भी पाण्डव गिरिजिह्वानी क्रिय के लिए उनकी कूटनीति पर निर्भर करता है । कवि ने भी कृष्ण को उनके हठी रूप में चित्रित किया है । लेकिन यहाँ कृष्ण के चरित्र का उतना ही ज़ा लिखा गया है जितना कर्ण से सम्बन्धित है । यद्यपि उसमें कृष्ण के चरित्र की सम्पूर्ण झलकियाँ कवि ने दे दी हैं । ... लीला पुरुषोत्तम भावान के रूप में वे तब अवतरित होते हैं, जब दुर्योधन अपने दरबार में उन्हें पकड़ना चाहता है । यहाँ कृष्ण के विराट् रूप की अवतारणा कवि ने की है । कृष्ण युद्ध को रोकने और शान्तिपूर्वक राज्य के बँटवारे को भी प्रोत्साहन देना चाहते हैं, लेकिन दुर्योधन की दुर्बुद्धि के कारण उनका मन्तव्य सफल नहीं होता ।

कृष्ण का चरित्र एक कूटनीतिज्ञ के रूप में विकसित होता है । पहले वे कर्ण को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं फिर इसमें असफल होकर वे हर प्रकार से पाण्डवों की विजय का समायोजन सफलतापूर्वक करते हैं । लेकिन कवि ने कृष्ण के चरित्र की उदात्तता को कहीं भी कम नहीं किया है, क्योंकि कृष्ण जानते हैं कि पुरुषार्थ के लक्ष्य में ही नहीं है । पवित्र शील उससे कहें बड़ी बाज है । इसीलिए कर्ण की मृत्यु का समायोजन करके भी कृष्ण अन्दर से प्रसन्न नहीं दिखाई देते और एक उदास अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित दीखते हैं :-

समस्या शील की समग्रम गहन है,
समस्त पाता नहीं कुछ क्लान्त मन है ।
न हो निश्चिन्त कुछ अवधानता है,
जिसे लजता उसी को मानता है ॥ - ।

भीष्म का चरित्र विशेष महत्व का नहीं है। वे केवल शरशैया पर हमारे सामने आते हैं और कृष्ण के समान वे भी कर्ण से युद्ध विरत होने का आग्रह करते हैं। इन्द्र अपने पुत्र अर्जुन की सुरक्षा के लिए छली रूप में प्रस्तुत किये गये हैं, उनके चरित्र की किसी नयी विशेषता की दल्पना कवि ने नहीं की है। द्रोण, दुर्योधन या युधिष्ठिर भी पारम्परिक चरित्रों के रूप में ही इस काव्य में आते हैं कुन्ती के चरित्र में कवि ने मातृत्व के भीषण अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि की है। इस दृष्टि से इस चरित्र में कुछ नवीनता आ गई है। प्रथम सर्ग में जब कर्ण अपमानित होता है तब भी कुन्ती पर्दे के पीछे बैठी हुई है। आहत होकर भी वह कर्ण के जन्म का रहस्य नहीं छाल पाती है। तो अन्तिम याचना लेकर कर्ण के सामने उपस्थित होती है। यद्यपि कर्ण बहुत कटु वक्ता होता है लेकिन अपनी वत्सलता से वह कर्ण के अन्तर बोलते हुए स्नेह द्रोत को बोलने में सफल होती है।

रश्मि रश्मी में 'व्यर्थ की घटनाओं' का निराकरण किया गया है। कवि ने उन्हीं घटनाओं और परिस्थिति का चुनाव किया है जो कर्ण के उदात्त मानवीय चरित्र के उद्घाटन में सहायक होती हैं। कर्ण के बचपन की कथा को इसलिए कवि ने नहीं लिया है। काव्य का आरम्भ कर्ण के सार्वजनिक अपमान इसीलिए होती है कि यह घटना कर्ण के अनेकसम्पूर्ण मानसिक विकास में एक पृष्ठभूमि का काम करती है। यही घटना कर्ण को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि वर्तमान समाज व्यवस्था में योग्यता ही सब कुछ नहीं है, बल्कि उसके लिए उच्च कुलाद्भुत होना भी आवश्यक है। इसी सामाजिक विकृति के खिलाफ कर्ण आजीवन संघर्ष करता है। अपने चरित्र और कार्यों द्वारा वह प्रतीकात्मक ढंग से यह सिद्ध कर देता है कि वह वंशानुगत उच्चता के विश्वास है और इस संघर्ष को वह अन्त तक जारी

रसता है। इसी प्रकार परशुराम का निष्पत्यत्व - ग्रहण या कृष्ण कुन्ती और भीष्म द्वारा उसे समझाये जाने और पक्ष बदलने के तर्कों का आयोजन भी इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार इन्द्र का छल से कर्ण से कवच - कुण्डल माँग लेना भी उसकी दानवीरता की परीक्षा और निःस्वार्थता सिद्ध करने के लिए आवश्यक है प्रसन्न है। अतः शैली की दृष्टि से घटनाओं का घुनाव और सर्गों का आयोजन सर्वथा उपयुक्त है।

कर्ण ने तार्जुनिक त्वमान दो तारम्भ में रखकर कवि ने उसके निर्णयों के लिए एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी है। कृष्ण इन्द्र और कुन्ती द्वारा कर्ण की परीक्षा लिए जाने का क्रम भी शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त वैज्ञानिक है। इनके क्रम में कोई भी हेर फेर कर्ण के चरित्र के मनोवैज्ञानिक विकास को शिक्षित कर सकता था। अतः काव्य शिल्प की दृष्टि से सर्गों का विभाजन और क्रम अत्यन्त उपयुक्त है। इस प्रकार घटनाओं और परिस्थितियों के चयन तथा क्रम की दृष्टि से इस काव्य का शिल्प अत्यन्त सुगठित और सुसंयोजित है।

कवि ने प्रत्येक सर्ग में अलग अलग छन्दों का प्रयोग किया है। यह छन्द परिवर्तन मात्र परिवर्तन के लिए ही नहीं है। विषय और मानसिक परिस्थितियों तथा घटनाओं की सविदनात्मक पकड़ को नज़र में रखते हुए ही छन्दों का आयोजन किया गया है। कर्ण की उदासीनता और निराशा के क्षणों में प्रयुक्त छन्द की गति अत्यन्त धीमी और मन्थर है जबकि युद्धस्थल के वर्णनों में प्रयुक्त छन्द की गति अत्यन्त वेगमान है। उनकी मात्रिक गति से ही वार रस का परिपार दृष्टिगत होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि कवि ने छन्दों का परम्परागत प्रयोग और परिवर्तन न करके उन्हें विषय और अनुभूतियों के अनुकूल रखा है। यही इसके छन्द विधान की प्रमुख

विशेषता है। यही नहीं एक ही वर्ग में अनुभव के सविद्वानात्मक स्तरों के परिवर्तन होने पर भी कवि ने छन्द योजना बदल दी है। जैसे - शास्त्रीय गायन में आलाप के बाद गायक द्रुत में जाता है उसी प्रकार अनुभूतियों या घटनाओं की गति और वेग में परिवर्तन आने पर कवि ने छन्द परिवर्तन को आवश्यक मान कर वैसा ही किया है।

धर्मवीर भारती

कनुप्रिया :

"कनुप्रिया" धर्मवीर भारती की कृष्ण काव्य परम्परा की आधुनिकतम बड़ी है। कवि ने कनुप्रिया - राधा के माध्यम से मनोवैज्ञानिक आधार पर उस "चरम तन्मयता" का महत्त्व प्रतिपादित किया है जो राधा-कृष्ण प्रेम का सर्वस्व है। ऐसे ही क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है - महत्त्व उसका नहीं है - महत्त्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कार होता है - चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मुख्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है - इस तरह कि समस्त बाह्य - अतीत, वर्तमान और भविष्य सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूति हो गया है और हम हम नहीं रहे — कनुप्रिया की सारी प्रतिक्रियाएँ उसी तन्मयता की विभिन्न स्थितियाँ हैं। * -¹ कवि ने इस काव्य - रचना में महाभारत काल से जीवन के अन्त तक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के इतिहास निर्माण को कनुप्रिया की इसी दृष्टि से देा कर उस का अत्यन्त भावपूर्ण सरस चित्रण किया है। कनुप्रिया की मूल्यवृत्ति "संशय या जिज्ञासा नहीं, भावानुकूल तन्मयता है। * -¹

"कनुप्रिया" कृष्ण सम्बन्धी अनेक मधुर गीतों की अनमोल मञ्जूषा है। कनुप्रिया - राधा अपने कनु - कृष्ण के साथ

1- कनुप्रिया, सप्तम संस्करण, पृ० 6-7

2- वही

पृ० 7

के नाचने के बाद घर लौटने पर कड़ी दुःखी होकर पश्चात्ताप करती हुई कृष्ण के परम दिव्य माहात्म्य का वर्णन करती है :-

जब मैं जाना ही नहीं चाहती
तो बाँसुरी के एक गले अलाप से
मदोन्मत्त मुझे बीच कुलाते हो
और तब तापित नहीं जाना चाहती
तब मुझे शतः शृ एष कर
सम्पूर्ण बना कर लौटा देते हो । -1

कनुप्रिया अपने कनु के साथ परम साक्षात्कार के क्षणों में घटित अनेक हाव भावों का वर्णन करती है और अपने को "जन्म जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकान्त सगिनी" बताती है-

पर तो मैं कभी कभी परम साक्षात्कार के क्षणों में
बिलपुल जड़ और निस्पंद हो जाती हूँ
इसका मर्म तुम समझते क्यों नहीं साँपरे
तुम्हारीजन्म जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला
की एकान्त सगिनी ॥ -2

कनुप्रिया की अनुभूति है कि श्रीकृष्ण का प्रेम तारे संसार से पृथक है -

तुम्हारा अजीब सा प्यार है,
जो सम्पूर्णतः बाँध कर भी
सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है ॥ -3

1- कनुप्रिया, सप्तम संस्करण, पृ० 17-18

2- वही, पृ० 21.

3- वही, पृ० 21

"तुम मेरे कौन हो?" शीर्षक गीत में राधा ने श्रीकृष्ण के साथ अपने शैक्षिक सम्बन्धों का उल्लेख किया है -

कनू ही मेरा एक मात्र अन्तरंग सखा है ।
कान्ह मेरा रक्षक है, मेरा बंधु है, सहोदर है ।
कनू मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गंतव्य
कान्हा मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है ॥ -1

चिन्तु जेव संबंधों से होते हुए भी राधा अपनेसाँके समुद्र को पूर्ण रूप से माप नहीं पाती कि यह वास्तव में उनको कौन है -

मेरे साँके समुद्र
तुम आधिर हो मेरे कौन
में इसे अभी माप क्यों नहीं पाती । -2

श्रीकृष्ण सृष्टा है और राधा उनकी सृजन - सगिनी । दोनों के मलामिलन में यह रागस्त सृष्टि जीन भी हो जाती है और " केवल में " ही रह जाता है -

तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है
मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ है
केवल में ॥ -3

यह निम्नलिखित सृष्टि राधा की लीलात्मक है श्रीकृष्ण के लिए -

1- कृष्णिया, पृ० 35

2- वही , पृ० 38

3- वही , पृ० 44

सुनो मेरे बन्धु
 अगस्त्यह निखिल सृष्टि
 मेरा लीला तन है
 तुम्हारे आस्वादन के लिए ।। -1

राधा कृष्ण की अन्तरंग सखी है । उन्हें हर दिशा में मिलन के रक्षित दिगार्ध देते हैं । कृष्णप्रिया और कृष्ण का यह मिलन सम्पूर्ण प्रकृति और पुरुष का मिलन है जिसमें दिशाएं घुल जाती हैं, जगत लीन हो जाता है । और समय गतिहीन हो जाता है-

तुम्हारे साथ मैं हूँ रेखल मैं
 तुम्हारी अंतरंग केलि सखी ।। -2

इस प्रकार कृष्णप्रिया में राधा कृष्ण के प्रणय प्रसंग के पौराणिक संदर्भ को आधुनिक सन्दर्भों से सम्पृक्त करके मनोवैज्ञानिक रूप से अंकित किया गया है जिसमें पुरातन नूतन का समन्वय है +

कृष्ण का स्वरूप :

धर्मवीर भारती ने राधा-कृष्ण के पौराणिक महाभारतीय चरित्र की आधार भित्ति पर दो उत्कृष्ट काव्यों की सृजना की है । "अन्धायुग" इस दृष्टि से प्रथम प्रयास है जहाँ युद्धजन्य विभीषिका को गहिरत, हेय एवं सर्वथा त्याज्य बतलाकर नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठापन की गई है । कृष्ण ही क्षय काव्य के

1- कृष्णप्रिया , पृ० 48

2- वही , पृ० 50 -54

केन्द्रस्थ पात्र हैं, जो सभी पात्रों और परिस्थितियों के प्रेरक बन गये हैं। उन्होंने कृष्ण के परम्परागत सोलहकला सम्पूर्ण अवतारी स्वरूप को स्वीकारा तो है लेकिन सामयिक सन्दर्भों में युद्धजन्य गतिविधियों में भीषिका को अमानवीय घोषित करते हुए कृष्ण को वचक प्रपञ्चकारी कूटयुधि, महाभारत प्रणेतृ तक कह दिया है। इन दो अतिवादी मार्गों ॥ अतिभावुक और अति वैचारिक ॥ के मध्य जो एक सहज स्वीकार्य मार्ग होना चाहिए, वह धर्मवीर भारती में नहीं है।

कनुप्रिया में भी उन्होंने कृष्ण के परम्परागत स्वरूप को प्रदर्शित किया है। यहाँ रसिक शिरोमणि कृष्ण तथा कूटनीतिज्ञ कृष्ण दोनों का ही उल्लेख है। युद्ध की कूटनीति के संचालक कृष्ण एतिलस के सख्त भी है, प्रेमी भी है और जल के स्पर्धालु भी है। कनुप्रिया में कनु अत्यन्त हैं तथापि पद्मा में जानते उनकी के महत्त्व आदर्शों युगान्तरकारी सिद्धान्तों, सशक्त जीवन मूल्यों की परिख्यापित है। कवि ने कृष्ण की मान्यताओं को दृढ़ क्षण रीति घट के तुल्य आपस करार दिया है। उनके स्वधर्म, कर्म, दायित्व को सविद्वन्शीलता के अभाव में आधुनिक समस्याओं के निष्कर्ष पर निरर्थक आकर्षक, न्याय ~~व्यवस्था~~ घोषित किया है। उनका पाप पुण्य धर्माधर्म, करणीय, अकरणीय, न्याय दण्ड, क्षमाशील वाला युद्ध अत्यन्त माना है और उनके व्यक्तित्व को नाकारा गया है लेकिन कृष्ण वरिष्ठ कवि की अद्भुत सृष्टि है। कनु का परिचय चिरन्तन प्रेमी के रूप में होता है। जो बाह्य रूप में निर्लिप्त निर्द्वेष होकर भी अन्तर्गमन से रसिक शिरोमणि है। उन्हें राधा की प्रणामक अंजलि और अकिम मुद्रा विस्मय-विमोघ कर अबाध एवं निश्चय बना देती है। कृष्ण का प्रेम अद्भुत है जो लोकोत्तर आदर्शों पर टिका है। राधा और कनु का विशिष्ट नाता है। राधा के लिए कनु सर्वस्व है।

कन्वु विराट पुरुष है । समस्त सृजन उसकी सृष्टि है , वे
 लोकोत्तर पुरुष विपरीत एवं विरोधी परिस्थितियों में जीने में
 समर्थ हैं । कृष्ण युग व्याख्याता, दार्शनिक, युग द्रष्टा, राजनीतिज्ञ
 तथा युग प्रणेता हैं । परिव्रगत ऐसी विषमताएँ उनके उदात्त,
 जलौहिक एवं मलिन धरित्र की बोधक है । तीन के कोमल एवं
 चोरेर पक्षुषों के उद्भूत सप्तमन्जर का प्रमाण उनका चरित्र है ।
 कृष्ण युग निर्माता हैं एवं दार्शनिक हैं । जो अर्जुन को तो स्वधर्म,
 कर्म, दायित्व निर्णय का पाठ पढ़ा कर कर्मयोगी बना देते हैं ।
 लेकिन युद्धजन्य नेराश्य घुटन, बेवसी संशय तथा विघ्नित मानव
 मूल्यों के वातावरण में स्वयं विकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं । महाभारत
 का अतुलित विनाश लोक तारक कृष्ण को सोचने को बाध्य कर देता
 है- कि युद्ध को साकार रूप देने में उनका भी उत्तरदायित्व है । कृष्ण
 की यह नेराश्य जन्य पिन्तन प्रट्टिया युद्धो परान्त मानव मूल्यों के
 विघटन से उद्भूत अराजकता की उपज है । युद्ध के भायावह वातावरण
 में कोई भी कृष्ण की मान्यताओं को चुनने के लिए तत्पर नहीं है ।
 कृष्ण भी निर्णयार्थ कोई तर्कांगत कसौटी नहीं दे पाते । अपनी
 शक्ति राधा के बिना कन्वु नवसृष्टि की सृजना में असफल रह जाते हैं
 इसलिए असफल इतिहास को जीर्णोद्धार के समान त्याग कर, आत्मलीन
 होकर राधा को स्मरण करते हैं । इतिहास और समापन इन ओं
 में इतिहास पुरुष कृष्ण को कवि ने नवीनतम रूप में प्रस्तुत किया
 है । यहाँ कृष्ण ने इतिहास निर्माण की सफलता दिखा कर विश्वास
 प्रेम, समर्पण, त्याग एवं तन्म कारी जगों की प्रतिष्ठा की है ।
 समापन, ओं कन्वुप्रिया को इतिहास के बदलाव का काव्य सिद्ध करता
 है । जहाँ लीलामय रासरसिक, भक्त - रक्षक, जगतोद्धारक का
 नवीन रूप दृष्टव्य है । यहाँ कृष्ण के चरित्र को दोषयुक्त दिखला
 कर राधा एवं कृष्ण के तन्मयतापूर्ण प्रेम को उपयुक्त ठहराया है ।

कनुप्रिया के अन्तर्गत कृष्ण के रसिक शिरोमणि एवं महाभारतीय दोनों ही रूपों को प्रस्तुत किया है और उन्हें अस्तित्ववादी दर्शन की कसौटी पर कसा है। यद्यपि कृष्ण के परम्परागत चरित्र पर आस्तित्वक दर्शन की विजय दिखलाई है परन्तु आस्तित्वक दर्शन की विविध प्रवृत्तियों का निर्वाह करने में कृतिकार असमर्थ रहे हैं। कवि ने पौराणिक एवं महाभारतीय कृष्ण के चरित्र का चित्रण किया है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा की गणना प्रमुख छायावादी कवियों में की जाती है। उनके काव्य की यह विशेषता है कि वे आरम्भ से अन्त तक रहस्यवाद की रही हैं। उनके काव्य में रहस्यवाद का स्तर सबसे प्रबल रहा है। कृष्णा के प्राधान्य के कारण वे काव्य में अन्तर्मुखी बन अपने दुख और जगत के सृष्टा के रहस्यमय रूप के ही मनोरम गीत गाती रही हैं। कृष्णा उनके साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति है। इसी ने उनकी लेखनी से समाज के भयावह चित्र अंकित कराए हैं और इसी ने उन्हें अपने कल्पना लोक में रहस्यमय, अज्ञात प्रियतम के अनन्त विरह में व्यथित और व्याकुल रूप में प्रस्तुत किया है।

महादेवी के काव्य की यह विशेषता रही है कि - "वे आरम्भ से अन्त तक एक रस रही हैं।" उनमें कहीं भी व्यवधान नहीं मिलता है। वे आरम्भ से अन्त तक अपने अज्ञात रहस्यमय प्रियतम की एकाकिनी विरहिणी बनी रहीं हैं। इसीलिए उन्हें आधुनिक मीरा कहा जाता है। उनके काव्य में पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना है। उन पर बड़ ही कृष्णा एवं दुरावाद तथा विवेकानंद और रामतीर्थ के दार्शनिक विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसी कारण उनके काव्य में परस्मैत्व, अस्मैत्व, और प्रकृति तत्त्व की प्रधानता रही है। उनके हृदय की वैराग्य भावना प्रबल होती चली गई है। उनके काव्य में अस्तवाद की प्रधानता है। उस असीम अज्ञात ने सृष्टि का निर्माण किया और अन्त में वह उसी असीम अज्ञात में लीन हो गई - तुम्हीं में नाश। इसी आधार पर उन्होंने आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता मानी है - " मैं तुमसे हूँ एक, तुम्हीं में होती अस्त-वर्ति। " उनका काव्य अनुभूति प्रधान है, उनकी वेदना मिश्रित साधना गीतों का रूप धारण कर

सुकुमय बन जाती है। यहाँ आकर सुख दुःख का एकीकरण हो जाता है।

महादेवी की रहस्यवादी रचनाओं की मूलभावना अलौकिक प्रेम की रही है। इस अलौकिक प्रेम भावना में विरह जनित पीड़ा और शोक की ही प्रधानता रहती है, यापि कहीं कहीं क्षणिक संयोग की भी दार्शनिक अनुभूति उभर आती है। महादेवी का प्रियतम आलौकिक फिर सुन्दर और लसीम है। वे निरन्तर उसी के विरह में व्यथित हो अपनी हृदयगत वेदना और दुःख के गीत गातीं रहतीं हैं। उनका यह दुःख भौतिक न होकर आध्यात्मिक अथवा आत्मिक ही अधिक रहा है। उनके इसी दुःख को वेदना भाव कहा गया है। उन की यह प्रणय वेदना माधुर्य मिश्रित है। इसीलिए उन्होंने अपनी इस वेदना को मधुमय पीड़ा कहा है, क्योंकि यह पीड़ा मधुमय है। इसीलिए वे इसी की अनुभूति में लसीम पुनः का अनुभव करती हैं। उनके सम्पूर्ण दार्शन्य में इस मधुमयी पीड़ा का अत्यन्त भावना प्रवण ज्वन हुआ है। उन्होंने अपनी इस मधुमयी पीड़ा का प्रकाशन प्रकृति के माध्यम से किया है। उनका प्रियतम रहस्यमय है। इसलिये उनकी प्रकृति भी सर्वत्र रहस्यमयी हो रही है। महादेवी आधुनिक युग की सुन्दर सरस, कवणा पूर्ण गीतों की अत्यन्त श्रेष्ठ गायिका हैं। इन गीतों में मीरा की सी वेदना, कवणा और मार्मिकता है।

महादेवी प्रणय की एकान्त साधिका रही हैं। उनकी यह प्रणय भावना आध्यात्मिक है इसलिये लौकिक प्रणय - भावना की वासना स्थूलता और मांसलता से सर्वथा असम्बन्धित रही है। इसे उनकी विस्तृत वैयक्तिक अनुभूति मानना चाहिए। किन्तुल देसी ही जैसी की मीरा की थी। रहस्यात्मकता का प्राधान्य इसी का

परिणाम है। लौकिक जीवन में प्रणय के अभाव के कारण ही महादेवी अलौकिक प्रियतम के माध्यम से अपनी अतृप्त प्रणय भावना का प्रकाशन करती रही हैं। महादेवी वर्मा की इस प्रणय भावना में एक सुदृढ़ आस्था, सच्चे विश्वास, लम्बी एकान्त साधना और निजी गहन अनुभूतियों का सुदृढ़ ठोस आधार है। वे आरम्भ से अन्त तक अपने अलौकिक प्रियतम की एकान्त प्रणयिनी बनी रही हैं। समय की उथल पुथल और बदलती परिस्थितियों उन्हें प्रभावित करने में असमर्थ रही है।

महादेवी का काव्य अनुपम सौन्दर्य से मण्डित है। उनके छायावादी सौन्दर्य में वियोग भ्रंगार के प्राधान्य ने अद्भुत सरसता और प्रभविष्णुता उत्पन्न कर दी है। प्रतीक और अंकार सुन्दर, स्वाभाविक हैं। छन्दों में गीतों की नई पद्धति एक अद्भुत निधार उत्पन्न कर देती है। भाषा संस्कृत-गर्भित, मधुर, और कोमल है। भाव और भाषा का पूर्ण सामन्वय है। शब्द ध्वनि सुन्दर और ललित है। कहीं कहीं ब्रजभाषा के कोमल शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। उनकी शैली प्रोच है जिसमें शब्दों की लालणिक प्रयोगों ने अभिनव सौन्दर्य भर दिया है। अमूर्त वस्तुओं का मूर्तिकरण भावों और प्राकृतिक रूपों का मानवीकरण किया गया है। इनकी शैली साहित्यिक अधिक होने के कारण उसमें अस्पष्टता आ गयी है जो छायावादी काव्य की एक प्रधान विशेषता रही है। महादेवी सदैव प्रतीकों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों का प्रकाशन करती है। इन प्रतीकों में से कुछ परिचित होते हैं और कुछ अपरिचित। ये अपरिचित प्रतीक ही दुर्लभता उत्पन्न कर देते हैं। समष्टि रूप से उनकी शैली और भावाभिव्यक्ति है।

सुमित्रा नन्दन पन्त =====

पन्त जी का जन्म हिमालय की सुरम्य उपत्यका में स्थित कौशानी नामक ग्राम के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था । वहाँ की उन्मुक्त प्रकृति ने इन भावुक किशोर को अनजाने ही अपनी ओर आकर्षित कर उसमें प्रकृति के प्रति एक अद्भुत सौन्दर्यनिष्ठ भावना भर दी थी और यही कोमल भावना उनके काव्य की जन्म दात्री बन गई । प्रकृति का अज्ञात आकर्षण उसे एक अव्यक्त सौन्दर्य में तन्मय कर फिर और जीवन के प्रति एक गम्भीर आश्चर्य की भावना से भर देता था । इस प्रकृति प्रेम ने जहाँ उसे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्याण का उपात्त बनाया, वहीं साथ ही जनभीरु भी बना दिया । बाद में जब यह किशोर अपना प्रारम्भिक अध्ययन समाप्त कर उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रयाग आये उनकी उस मूल प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आ पाया ।

प्रयाग में अध्ययन करते हुए, पन्त जी ने अंग्रेजी की रोमान्टिक कविता, रवीन्द्र काव्य, संस्कृत, दर्शन आदि का अध्ययन किया और प्रभावित हुए । परन्तु प्रकृति उनके मन प्राण पर गहरे रूप में छाई रही । काव्य और अध्ययन की ओर अधिक रुचि रहने के कारण वह अपने पाठ्यक्रम की ओर अधिक ध्यान न दे सकें और कुछ वर्ष उपरान्त विविधविधालीय उपाधियों का मोह त्याग कर एकमात्र काव्य साधना में सुल्लीन हो गए । पन्त जी की एक प्रवृत्ति उल्लेखनीय रही है । वह जनभीरु। अतः एकान्त प्रिय रहे हैं । संघर्षों को उन्होंने दूर छोड़ कर ही देह और समझा है । इनके कभी भाग नहीं लिया । स्वभाव की हसी एकान्तता ने उनकी प्रकृति को विभिन्न प्रकार के प्रभावों की सहज ही ग्रहण करने योग्य

झा दिया है। छायावाद से प्रभावित हो पहले वे छायावादी बने। जब प्रगतिवाद ने छायावाद का साधार विरोध किया तो छायावाद का विरोध करने में अग्रणी बन प्रगतिवादी हो गये और जब प्रगतिवाद का अत्यधिक भौतिक और उग्र स्वर उनके कोमल स्वभाव और कोमल कल्पना को अधिक संतोष नहीं दे सका तो प्रगतिवाद का विरोध करके अरविन्दवादी दार्शनिक कवि बन गये। उनके काव्य में पाये जाने वाले ये विभिन्न घटाव उतार उमर से भिन्न और कसम्बद्ध से प्रतीत होने पर भी आन्तरिक रूप से एक ही मूल प्रकृति और विचारधारा से जुड़े रहे हैं।

कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध रहे हैं जिसमें प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति मन में उठने वाली जिज्ञासा रहस्यात्मकता या समीक्षा कर गई है। परन्तु कवि जैसे जैसे नागरिक जीवन के अभ्यस्त बने उनके हृदय में यौवन की उमंग उठने लगी वे नारी के प्रति अधिकारिक आकृष्ट होते बने गये, प्रकृति का स्थान नारी ने ले लिया नारी सौन्दर्य को प्रकृति सौन्दर्य से बढ कर मानने लगे। उन्हें समस्त प्रकृति सौन्दर्य में नारी सौन्दर्य की ही छाया दिखाई देने लगती है :-

आज गृह वन-उपवन के पास, लौटता राशि राशि हिमपात
छिल उठी आँखों में अवदात, कुन्द कलियों की कोमल पाँत ।
मुस्करा दी थीं, बोलोप्राण, मुस्करा दी थीं तुम अनजान ।।

पन्त की यह नारी - भावना मानसिक वासना-परक रही है। कवि भावी पत्नी की केवल कल्पना ही करता रह गया है। संघर्ष और जीवन से सहज ही भयभीत रहने वाला कवि अन्तर्मुखी बन जाता है। कवि अपनी आत्मा का आलोचित सहज उत्साह छोड़

दार्शनिक बन गया है। वह जन्म में मृत्यु और वसन्त में पतझड़ के दर्शन करता है। अपने युग के आदर्शों में उसका विश्वास नहीं रहा है इसलिए वह बुढ़ियादी बन आत्मकल्याण और विश्व कल्याण की भावना से भर उठता है। यहाँ तक पन्त स्वामी रामकीर्ण, स्वामी प्रियेकानन्द के दार्शनिक तथा शैली, कीर्ति, रवीन्द्र आदि की शैली और चिन्तार से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

पन्त का बुढ़िवाद उन्हें विद्रोह के पथ पर ले जाता हुआ दिखाई देता है। भौतिकवाद का नया यथार्थवादी स्वर उनकी सम्पूर्ण पूर्व मान्यताओं को ध्वस्त कर उन्हें प्रगतिवादी बना देता है। पन्त काव्य के नवीन स्वर में भौतिकवाद और मार्क्सवाद के साथ अध्यात्म का भी पुट रहा है। एवि कल्पना को त्याग, यथार्थ के कठोरत घरातल पर उतर जाया है। उन्हें छन्दों का बन्धन और अलंकारों का मोह अक्षय्य हो उठा है। उनकी विषय वस्तु बदल गई हैं। अब वे प्रकृति का निरादर कर मानव महत्त्व की भावना से भर उठे हैं :-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम ।

अपने इस प्रगतिवादी काव्य में पन्त ने जन साधारण के दुख दर्द के चित्र अंकित किए हैं, पुरानी सामन्ती संस्कृत को मरणाणन्मुख घोषित कर नई मानवता की प्रशस्ति गाई है। परन्तु पन्त का कोमल प्राण प्रगतिवाद के उग्र विध्वंसकारी रूप की कठोरता को पूर्णतः आत्मसात करने में निष्कला तथा शीघ्रीवाद और अरविन्द दर्शन में कवि अमजीवी वर्ग को केवल अपनी बौद्धिक सशानुश्रुति ही प्रदान कर सका है जो सुन्दर होते हुए भी निष्प्राण है। इति

कारण कुछ लो ग पन्त को वर्गहीन बुद्धिवादी कहते हैं। पन्त संघर्ष जिद्दोह के स्वर गुंजाते हुए भी दर्शन में आश्रय ढूँढते रहे हैं। और कुछ समय उपरान्त दर्शन पर इतना अधिक हावी हो जाता है कि वह प्रगतिवाद का विरोध कर अध्यात्म द्वारा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बात करने लगते हैं। पन्त की यह स्वभावगत अस्थिरता उन्हें निरन्तर भटकाती रही है।

पन्त जी वस्तु जगत की विश्लेषिका से संव्रस्त हो पुनः अध्यात्म की ओर झुकते हैं। उन्होंने उच्च सांस्कृतिक आन्दोलन की मानवता के कल्याण के लिए अनिवार्य मान दार्शनिक विवेचन किया है। इसी समय पन्त अरविन्द आश्रम गये और वहाँ अरविन्द दर्शन से प्रभावित हुए। यह प्रभाव उनके काव्यों में गहन रूप में प्रकट हुआ है। उनमें पन्त पूर्ण दार्शनिक कवि बन गये हैं और साथ ही प्रगतिवाद के कटु विरोधी हो गये। पन्त प्रारम्भ से अन्त तक कहीं भी एकरस और स्थिर नहीं रह पाये हैं। प्रारम्भ में वे छायावादी रहे, फिर प्रगतिवादी बने और अन्त में विशुद्ध दार्शनिक कवि बन गये, जो अध्यात्म द्वारा सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वप्न देख रहे हैं। इसी अस्थिरता के कारण पन्त आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुपक्षित और विवादग्रस्त कवि माने जाते हैं। पन्त अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में कला परिष्कार के प्रति सतत जागस्क रहे हैं। उनकी कोमल कान्त पदावली में संगीत के समावेश ने अद्भुत सौन्दर्य भर दिया है। उनकी भाषा चित्रमय, सस्वर, संगीतमय है, उसमें अद्भुत ध्वनि शक्ति और ध्वन्यात्मकता है। छाँड़ी बोली को कोमल, ललित, प्रभविष्णु और भाव ध्वनि में सजल समर्थ बनाने में पन्त काव्य ने अपूर्व ऐतिहासिक भाग अदा किया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

=====

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न और बंगाल की शास्य श्यामल भूमि में पालित पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आधुनिक हिन्दी काव्य के युग प्रवर्तक कलाकार और छायावाद के सर्वाधिक शक्तिशाली विद्रोही कवि रहे हैं। निराला छायावादी कवि अक्षय रहे हैं, परन्तु इनके छायावादी काव्य की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमें कहीं भी पलायन, पराजय की भावना नहीं आ पाई है। उन्होंने न कभी छायावाद का विरोध किया और न प्रगतिवाद की प्रशंसा। उनकी आरम्भिक शैली और विषय-वस्तु छायावादी होते हुए भी उनके काव्य में न तो कहीं कल्पना की अतिशय उड़ान मिलती है और न कहीं जीवन रीति से भयभीत हो पलायन की भावना। वह जन्मजात विद्रोही रहे हैं। छायावाद के विरोधियों ने सबसे अधिक विरोध उनका निराला और उनके काव्य का ही किया था और निराला ने उस विरोध का पूर्ण शक्ति, साहस और विद्वता के साथ उत्तर दिया था। छायावाद के विरोधियों ने छायावाद और निराला पर साहित्यिक एवं व्यक्तिगत आक्रमण करने आरम्भ कर दिये थे। निराला की रचनाओं और लेखों की प्रमात्मक व्याख्यायें कर उन्हें लाञ्छित और अपमानित किया था। अपने विद्रोही स्वभाव के कारण वह किसी भी प्रकार के अनुचित लाञ्छन और उपेक्षा या अपमान को सहन नहीं कर पाते थे। पन्त ने जब उनके मुक्त छन्द को लेकर उन पर अनुचित आरोप किए थे तो उन्होंने पन्त की काव्य साधना की कलई खोल कर रख दी थी।

निराला अपने पारिवारिक, सामाजिक और साहित्यिक जीवन में निरन्तर दुखी, अभावग्रस्त और पीड़ित रहे थे। परन्तु वह अदम्य शक्ति और साहस के साथ इन सारे अभावों का सामना

करते हुए जीवन - पर्यन्त सृजन में लगे रहे । मानव की सहन शक्ति की एक अपनी सीमा होती है । साहित्यकारों द्वारा निरन्तर मिलने वाली इस उपेक्षा, अपमान और विरोध ने निराला को कुण्ठित बना दिया था इसलिए आर्थिक अभाव उन्हे जीवन भर सालता रहा और इसी आर्थिक विपन्नता, अर्धविक्षिप्ता-वस्था में विज्ञान, सुगठित, तावत शरीर और दे गोपम भव्य व्यक्तित्व के (विकास) हिन्दी साहित्य के शार्प स्थानीय कलाकोरों में गण्य-मान्य महामानव निराला सन् 1961 में प्रयाग की एक संकीर्ण, गन्दी गली के एक छोटे से मकान के एक छोटे से कमरे में अपनी जीवन लीला को समाप्त करने को बाध्य कर दिये गये थे । उनके निधन के उपरान्त सम्पूर्ण हिन्दी स्मार ने उन्हें एक स्वर से अपने युग का सर्वाधिक प्रगतिशील, कर्मठ और सशक्त कलाकार मान उनका सम्मान किया था, उनकी जयन्तियाँ मनायी थी ।

निराला बहुमुखी विज्ञान साहित्य के प्रणेता थे , परन्तु उनकी वास्तविक प्रतिभा का विकास और स्फुरण उनकी कविताओं में हुआ है । उनका काव्य अपने ओजगुण के कारण अपने समकालीन काव्य में अन्य है । उनमें एक भव्य गरिमा, सौन्दर्य और अद्भुत निष्ठता है । दार्शनिकता के पुट ने उनके काव्य को अधिक गहन और गम्भीर बना दिया है । अस्तवाद उनका प्रिय विषय रहा है । भावों की व्यञ्जना विधा और प्रभावोत्पादक है। कवि की सौन्दर्य दृष्टि अत्यन्त प्रखर, सूक्ष्म और व्यापक है । इसी कारण जीवन, जगत और प्रकृति के उनके अनेक चित्र उनकी अन्तर्भावना के अनुरूप ही बन पड़े हैं ।

निराला की विविध छायावादी रचनाओं में प्रकृति प्रेम, देश-प्रेम, और कल्याण की भावना के अति-प्रोत ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें छन्द मुक्ति, संगीत, भाव सौन्दर्य और दार्शनिकता का

का प्राधान्य रहा है। इनमें बुद्धि और भावना दोनों का समन्वय रहा है। यहाँ दर्शन के साथ-साथ भ्रूणार के प्रति भी झुकाव है। शैली की दृष्टि से छायावादी होती हुई भी विषय वस्तु और भाषा की दृष्टि से प्रगतिशील है। इनमें भावी प्रगतिवादी निराला का चरमिष्ठ रूप रहा है। उनकी कविताओं में स्तुति, प्रशंसा, प्रगति सम्बन्धी और विचार प्रधान गीत संगीत हैं। इनमें नारी सौन्दर्य का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म, आकर्षक और मार्मिक शैली में हुआ है।

दार्शनिक रचनाओं में जटिलवाद से प्रभावित विचार प्रधान कविताएँ हैं, जिनमें काव्य सौन्दर्य की अपेक्षा निबन्धात्मकता अधिक रही है। निराला के दार्शनिक विचारों की दृष्टि से ही उनका महत्त्व माना जा सकता है। उदात्त प्रौढ़ रचनाओं में निराला की काव्य कला अपने चरमोत्कर्ष का स्पर्श कर रही है। समस्त हिन्दी साहित्य में ऐसी भ्रूण रचनाएँ विरल हैं। व्यंग्य पूरित रचनाओं में कवि ने समाज व्यवस्था के प्रति अत्यन्त गहरा और तीखा व्यंग्य किया है। इनमें व्यंग्य के आविष्कार के कारण भाषा और शैली अपनी समस्त गहिमा और प्रौढ़ता को त्याग अत्यन्त तीखी और सरल सहज बन गई है।

प्रगतिशील रचनाओं में बलिार समाजवाद का गहरा प्रभाव रहा है। इनमें काव्याधारों के निर्वाह के स्थान पर वस्तु वाद की ओर झुकाव और दीन हीन शोषित जन के प्रति सहानुभूति तथा अत्याचार के प्रति तीव्र विद्रोह और आक्रोश है। निराला की रचनाओं में देश के विभिन्न स्तरों, किस्मों की विभिन्न दिशाओं और भाषा के विविध क्षेत्रों तथा रूपों का प्रकाशन करने

वाली ऐसी कविताओं और गीतों का संग्रह है जिनमें श्रवित, विषाद, चिन्तन, सानसिद्ध छन्द, निर्वेद आदि के स्वर प्रबल रहे हैं। इन कविताओं में निराला की सम्पूर्ण काव्य साधना अपने विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करती है, परन्तु इनमें विषाद का स्वर काफी गहरा हो उठा है।

निराला हिन्दी प्रगतिवादी काव्य के जनक और मूलप्रेरक रहे हैं। वह पश्चिम के समान प्रगतिवादी आन्दोलन से प्रभावित हो छायावाद की आलोचना करते हुए एकाएक प्रगतिवादी नहीं बन गये थे। उनके काव्य में आरम्भ से ही रुढ़ियों के प्रति विद्रोह, दीन-हीन के प्रति सहानुभूति और शोषण अत्याचार के खिलाफ तीव्र आक्रोश की भावना मिलती है। उनमें समस्त काव्य का प्रधान स्वर आज और संघर्ष का रहा है। इसीलिए जब हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन ने जोर जठा तो उसे सत्त ही निराला का पूर्ण सट्टिय सहयोग मिला। निराला ऐसे बर्मेठ साहसी आलोचक का सहयोग पा कर प्रगतिवाद सुब फना फूला। इस दृष्टि से हिन्दी काव्य के क्रमिक स्वाभाविक विकास में निराला का ऐतिहासिक योगदान रहा है।

हिन्दी में निराला मुक्त छन्द के प्रवर्तक माने जाते हैं, इन के मुक्त छन्द को लेकर हिन्दी जगत में काफी शोर मचा था, परन्तु आज हिन्दी में यही छन्द सबसे अधिक प्रचलित है। निराला काव्य के कला पक्ष की यह विशेषता है कि उसमें भाषा, छन्द, शैली, शब्द चयन आदि का संयमित और संगठित रूप मिलता है। भाषा भाव के अनुरूप परिवर्तित होती चलती है। निराला की काव्य-साधना निरन्तर विकासोन्मुख रही है। उसमें छायावाद की कोमलता और विद्रोह, प्रगतिवाद की उग्रता और आज तथा प्रयोगवाद की मशीन कला का विकास हुआ है। इस दृष्टि से निराला को आधुनिक युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

चतुर्थ - अध्याय

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व -

भाव पक्ष

॥८॥ सहज प्रवृत्तियाँ : सामान्य विवेक

॥१॥ सहज प्रवृत्ति शब्द की व्याख्या

2- सहज प्रवृत्तियों का वर्गीकरण

॥९॥ भाव का स्वरूप

॥१०॥ भाव एवं सहज प्रवृत्तियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

॥११॥ मनोभाव, स्वरूप और विकास

॥१२॥ आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोभावों का स्थान

1- वात्सल्य भाव

2- सख्य भाव

3- संयोग शृंगार भाव

4- विप्रलम्भ शृंगार भाव

5- रागात्मक मनोभाव

6- विरागात्मक मनोभाव

7- हास्य मनोभाव

8- आहं मनोभाव

9- दैन्य मनोभाव

- : चतुर्थ - अध्याय : -

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व : भाव पक्ष

भावात्मक प्रवृत्तियाँ और आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य

सहज प्रवृत्तियाँ : सामान्य विवेचन

सहज प्रवृत्ति शब्द की व्याख्या :-

हिन्दी साहित्य में "सहज प्रवृत्ति" को अंग्रेजी के "इन्स्टिक्ट" के पर्यायवाची शब्द के रूप में माना गया है। अंग्रेजी का "इन्स्टिक्ट" शब्द लैटिन के "इन्स्टिक्टस" शब्द से सम्बन्धित है। -1 यह नैसर्गिक व्यवहार के लिए प्रयुक्त किया जाता है। सहज प्रवृत्तियाँ जन्मजात ही होती हैं। -2 ये प्रवृत्तियाँ अकेले अवस्था में दिये गये कार्य विधान से सम्बन्धित हैं। -3 व्यक्ति में ये स्वाभाविक रूप से होती हैं तथा जाति एवं वर्ग के अनुसार बदलती रहती हैं। इनका प्रदर्शन व्यक्ति के कार्य व्यापार में होता है। -4 बिना पूर्व शिक्षा के ही ये अपना प्रभाव स्थापित करती हैं। -5 व्यक्ति सहज प्रवृत्तियों द्वारा भावात्मक उत्तेजना प्राप्त कर कार्य करने के लिए प्रेरित होता है तथा तत्सम्बन्धित विशेष क्रिया में संलग्न हो जाता है। -6 यही अनुभव और क्रिया करने की जन्मजात प्रवृत्ति ही सहज प्रवृत्ति कहलाती है। -7 ये जन्मजात प्रवृत्तियाँ ही सहज प्रवृत्तियाँ हैं। -8

1- इन साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ग्रन्थ -12, पृष्ठ 323

2- एम साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ग्रन्थ -12, पृष्ठ 323

3- द कानसाइज आक्सफोर्ड डिक्शनरी, सं० एच० डब्ल्यू बुनर तथा एफ० जी० फुनर, पृष्ठ 423

4- रॉबर्ट आक्सफोर्ड डिक्शनरी, ग्रन्थ-1, सं० सी० टी० ओनिक्स, पृष्ठ 1018

5- ब्रिटीश जर्नल, प्रिन्सीपल्स ऑफ साइकलाजी, अनुवाद -24

6- ब्रिटीश मेडिकल, इन आउट लाइन ऑफ साइकलाजी 1949, पृष्ठ 110

7- मेरी स्टुअर्ट तथा सी० आर्कन, मार्टन साइकलाजी एण्ड एजुकेशन, पृष्ठ 23

8- सी० डब्ल्यू कैलविलिन, साइकलाजी ई 1957, पृष्ठ 55

इस प्रकार सहज प्रवृत्तियाँ मानव में स्वाभाविक तथा जन्मजात होती हैं। शिशु अवस्था से लेकर बाल्यकाल तक ये प्रवृत्तियाँ बीज रूप में शिशु के अवचेतन स्तर पर कार्यरत रहती हैं। ज्यों ज्यों शिशु की आयु बढ़ती जाती है इनका विकास भी उत्तरोत्तर होता जाता है। इनके विकास में वातावरण आलम्बन का कार्य करता है। उदाहरण के लिए डरने की प्रवृत्ति शिशु में जन्मजात होती है परन्तु उस अवस्था में वह खेलता हुआ अनेक ऐसी वस्तुओं के साथ भी खेल सकता है जो घातक होती हैं। एक बच्चा सर्प को बिना किसी डर के पकड़ सकता है परन्तु जब उसे समस्त वातावरण से परिचय प्राप्त हो जाता है तो वह उसी से डरने लगता है। एक युवक सिंह को देखकर छिपने का प्रयत्न करता है परन्तु एक बच्चा ज़िरो सिंह के घातक स्वरूप का ज्ञान नहीं है, उससे नहीं डरेगा। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि डर की मूल भावना शिशु में नहीं है बल्कि कहना यह चाहिए कि डरने की मूल प्रवृत्ति बीज रूप में शिशु के अवचेतन में विद्यमान है, परन्तु उसका विकास नहीं हो पाया है।

प्रत्येक सहज प्रवृत्ति धीरे धीरे शारीरिक क्रियाओं में विवर्तित होती है एवं इसका प्रकटीकरण सम्पूर्ण रूप में होने से पूर्व अर्धविकसित अथवा अपूर्ण अवस्था में होता है।¹ इस प्रकार जानोपलब्धि के बाद ही आगिक व्यवस्था में भावों की विशिष्ट उत्तेजन क्रिया की अनुभूति से जन्मजात आवेग की क्रिया का आरम्भ होता है। क्योंकि उनका अर्जन नहीं करता और न इच्छा के अनुसार कार्य ही। इन पर दूसरों के व्यवहार, आदत, अनुभव आदि का प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि ये सहज दैहिक गठन या स्नायु तन्त्र से जन्मजात स्नायु पथों पर आवृत्त हैं।²

सहज प्रवृत्तियों का वर्गीकरण :

=====

सहज प्रवृत्तियों का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने मत के

1- विलियम मैक्डगल, एन आउट लाइन ऑफ साइकलाजी § 1949 § पृ० 111

2- डा० यमुनाथ सिन्हा, मनोविज्ञान § 1960 § पृ० 291

अनुसार किया है। श्री हेवर महोदय सहज प्रवृत्तियों के केवल दो ही वर्ग मानते हैं। -1

॥1॥ रुच्यात्मक

॥2॥ प्रतिक्रियात्मक

श्री कुडवर्थ -2 सहज प्रवृत्तियों को तीन भागों में बाँटते हैं -

॥1॥ शरीर रक्षार्थ सहज प्रतिक्रिया जैसे भ्रूण, प्यास, कष्ट।

॥2॥ दूसरों से सम्बन्धित प्रतिक्रिया।

॥3॥ केवल सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ जैसे आत्म गौरव।

श्री मेकडुगल -3 महोदय ने सहज प्रवृत्तियों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा है -

॥1॥ सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ।

॥2॥ विशिष्ट सहज प्रवृत्तियाँ।

सामान्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों में भावात्मक क्रियाओं का योग न होने के कारण इनकी अभिव्यक्ति काव्य में नहीं होती। विशिष्ट सहज प्रवृत्तियों के अन्तर्गत मेकडुगल ने चौदह प्रवृत्तियों को स्थान दिया है :-

1- पलायन की वृत्ति।

2- युष्मत्ता की वृत्ति।

3- विकर्षणा की वृत्ति।

4- जिज्ञासा की वृत्ति।

5- काम वृत्ति।

6- संतति - पालन की वृत्ति।

7- आत्मसमर्पण की वृत्ति।

1- जेम्स हेवर - इन्सटिट्यूट इन मेन, पृ० 168-69

2- जारोएस0कुडवर्थ - साइक्लाजी, कठ अनुच्छेद, पृ० 102, 116

3- विलियम मेकडुगल, एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियल साइक्लाजी, तृतीय अनुच्छेद पृ० 43 से 76 तक।

- 8- आत्म गौरव की वृत्ति ।
- 9- सामाजिकता की वृत्ति ।
- 10- संग्रह वृत्ति ।
- 11- निर्माण की वृत्ति ।
- 12- हास्य की वृत्ति ।
- 13- भोजनोपार्जन की वृत्ति ।
- 14- प्रार्थना की वृत्ति ।

उपर्युक्त वर्गीकरण में कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो एक मुख्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं । उदाहरण के लिए काम या राग की प्रवृत्ति के अन्तर्गत काम, संतति पालन एवं सामाजिकता को रखा जा सकता है, क्योंकि व्यक्त की काम भावना में संतति पालन की प्रवृत्ति रहती है तथा संतति पालन के मूल में सामाजिकता निहित होती है । इसी प्रकार जिजीविषा या आत्मरक्षा की प्रवृत्ति के अन्तर्गत पलायन, भोजनोपार्जन, संग्रह, निर्माण, आत्मसमर्पण, एवं दैन्यता, धृणा या डेह की प्रवृत्ति के अन्तर्गत विकर्षण एवं युयुत्सा की वृत्तियाँ सम्निहित होती हैं । इसलिए भेदबुद्धि द्वारा प्रस्तुत प्रवृत्तियों को निम्न रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है :-

1- आत्म रक्षा की प्रवृत्ति -

- उपभेद -
- ॥ 1 ॥ पलायन की प्रवृत्ति ।
 - ॥ 2 ॥ भोजनोपार्जन की वृत्ति ।
 - ॥ 3 ॥ संग्रह की वृत्ति ।
 - ॥ 4 ॥ निर्माण की वृत्ति ।
 - ॥ 5 ॥ आत्मसमर्पण की वृत्ति ।
 - ॥ 6 ॥ दैन्यता या प्रार्थना की वृत्ति ।

2- काम या राग की प्रवृत्ति -

- उपभेद -
- ॥ 1 ॥ काम
 - ॥ 2 ॥ संतति पालन
 - ॥ 3 ॥ सामाजिकता

3- घृणा या द्वेष की प्रवृत्ति

उपभेद - §1§ विकर्षण

§2§ युयुत्सा

4- जिज्ञासा की प्रवृत्ति

5- हास्य की प्रवृत्ति

6- आत्म-गौरव की प्रवृत्ति

उपर्युक्त छः प्रवृत्तियों के अन्तर्गत मेकडुगल द्वारा प्रस्तुत चौदह प्रवृत्तियों को समाहित किया गया है। परन्तु इसका कोई निश्चित आधार न होने के कारण उपर्युक्त वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता। यदि हम आकर्षण सिद्धान्त के आधार पर विचार करें तो कुछ सहायता मिल सकती है।

आकर्षण शक्ति के प्रथम नियमानुसार जड़ और चेतन में निवासित सभी शक्तियों की दो प्रवृत्तियाँ - आकर्षण एवं विकर्षण होती हैं। साथ ही यह नियम मानसिक शक्ति पर भी प्रयुक्त होता है। आकर्षण शक्ति त्रिगुणात्मक नियमानुसार मानसिक शक्ति की प्रवृत्तियाँ तीन भागों में विभाजित हो जाती हैं - भावना, ज्ञान और केष्टा। ये आकर्षण और विकर्षण की प्रवृत्तियाँ तीन भागों में विभक्त होकर निम्नलिखित छः प्रवृत्तियों में विकसित हो जाती हैं⁻¹ :-

	आकर्षण	विकर्षण
1- भावना के क्षेत्र में	राग	द्वेष
2- ज्ञान के क्षेत्र में	जिज्ञासा	लज्ज
3- केष्टा के क्षेत्र में	प्रवृत्ति	निवृत्ति

उपर्युक्त वर्गीकरण की तुलना मेकडुगल के वर्गीकरण से इस प्रकार की जा सकती है -2 :-

1- डा० गणपति चन्द्र गुप्त - साहित्य का वैज्ञानिक विवेकन [सं० १७१] पृ० १४१

2- डा० गणपति चन्द्र गुप्त - साहित्य का वैज्ञानिक विवेकन [सं० १७१] पृ० १४१

आकर्षण सिद्धान्त पर आधारित वर्गीकरण

भैकङ्गल महोदय का
वर्गीकरण

1- राम

1- काम : उपभेद ॥1॥ काम

॥2॥ संतति पालन

॥3॥ सामाजिकता

2- द्वेष

2- द्वेष : उपभेद ॥1॥ विकर्षण

॥2॥ युयुत्सा

3- जिज्ञासा

3- जिज्ञासा

4- तर्क

4- उपहास

5- प्रवृत्ति

5- आत्मरक्षा

उपभेद - ॥1॥ भोजनोपार्जन

॥2॥ संग्रह

॥3॥ निर्माण

॥4॥ अहं

उपर्युक्त तुलनात्मक वर्गीकरण के अन्तर्गत राग, द्वेष और जिज्ञासा की प्रवृत्तियों का दोनों ही सिद्धान्तों में साम्य स्थापित हो जाता है। परन्तु तर्क एवं उपहास में कुछ विकृति भी दिखाई पड़ती है। यदि हम जिज्ञासा और तर्क का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो यह विकृति निर्मूल सिद्ध होती है, क्योंकि जिज्ञासा की प्रवृत्ति कोतुहल, आश्चर्य और विस्मय आदि भावों में परिणित हो जाती है तो तर्क की प्रवृत्ति बुद्धि का अस्वीकारात्मक पक्ष होने के कारण अरुचि, उपेक्षा एवं उपहास में बदल जाती है। अतः तर्क की प्रवृत्ति के अन्तर्गत उपहास की प्रवृत्ति को निर्धारित करना अशुभ नहीं है।

इसी प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्ति के अन्तर्गत आत्मरक्षा की दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों अर्थात् प्रवृत्ति के साथ भोजनोपार्जन, संग्रह, निर्माण तथा अहं तथा निवृत्ति के साथ पलायन, आत्मसमर्पण एवं आत्मदेन्य को स्थान देना अवेज्ञानिक नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि भैकङ्गल द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण आकर्षण सिद्धान्त से साम्य रखता है।

भाव का स्वरूप

=====

हिन्दी में भाव शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के " इमोशन "-¹ शब्द के पर्यायवाची अर्थ में लिया जाता है। इस शब्द का विकास लैटिन के सेंसर शब्द से हुआ है। " भाव " या " इमोशन " एक व्यापक शब्द है जिसमें अनुभूति, भावात्मक प्रत्योत्तर एवं कार्यात्मक उत्तेजनाएँ सम्मिलित हैं। सर्वप्रथम ग्रीक विद्वान ऐम्मा डास्त्रि ने ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में भावों का मनुष्य के व्यवहार में स्थान निर्धारित किया। उसने भावों को दो भागों में विभाजित किया - संगठनकारी भाव तथा विघटनकारी भाव जैसे - घृणा।

विलहम ब्रूट -² [1832-1920] ने वैज्ञानिक मनोविज्ञान की स्थापना की। उनके अनुसार प्रत्येक प्रति उत्तर एक प्रभावशाली संयोजन होता है अर्थात् सम्पूर्ण व्यवहार एकवर्गीय संवाहन रहता है। भाव एक मानसिक अनुभूति है [अर्थात् दुःख, इच्छा, आशा आदि] जो ज्ञान तथा चिन्तन से भिन्न होता है। इस प्रकार भाव व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है। इससे एक विशेष परिस्थिति में मनुष्य में स्नायविक परिवर्तन होता है। इसलिये यह व्यक्ति की अनुभूति, घटनाओं एवं पेशिक गतियों से सम्बन्धित ऐसी अव्यवस्थित अवस्था है जो एक विशेष मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में उत्पन्न होती है। -³ डा० नगेन्द्र के अनुसार बाह्य जगत के संवेदनाओं से मनुष्य के हृदय में जो विकार उठते हैं, वे ही मिल कर भाव की संज्ञान प्राप्त करते हैं। -⁴ ये जटिल वेदनारमक अवस्थाएँ हैं जिनकी उत्पत्ति परिस्थितिके प्रत्यक्ष अनुभूति

1- एन साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, ग्रंथ - 10, पृ० 2989

2- एन साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, ग्रंथ - 10,

3- पास थामस यंग, इमोशन्स इन मैन एण्ड एनीमल, पृष्ठ 57

4- डा० नगेन्द्र शीति चिन्ता लोभूषिता, पृ० ६४

या कल्पना से होती है ।¹ बुडवर्थ ने भाव को स्वेग की उत्तेजित अवस्था संवेदनात्मक अवस्था स्वीकार किया है ।² मैकडुगल महोदय -3 ने भाव के अन्तर्गत एक और भावात्मक अनुभूतियों तथा दूसरी ओर मानसिक एवं शारीरिक क्रिया व्यापारों को स्थान दिया है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं द्वारा भाव के स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है । निःसन्देह भाव अचेतन की वस्तु है । इसका विकास परिस्थिति की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता पर निर्भर करता है । जब व्यक्ति जिस भाव की अवस्था में होता है उसकी आंगिक कैटाए भी उसी भावानुकूल हो जाती है । उदाहरण के लिए क्रोध भाव की अवस्था में व्यक्ति की आंगिक कैटाओं पर प्रभाव पड़ता है । व्यक्ति इस अवस्था में एक विचित्रता का अनुभव करता है । उसकी आँखें तमतमा जाती हैं तथा चेहरा क्रोध के कारण लाल हो जाता है । अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है :-

- 1- भाव अचेतन मन की वस्तु है ।
- 2- भाव के विकास में परिस्थिति का विशेष योग होता है ।
- 3- भाव की स्थिति में व्यक्ति की मानसिक एवं आंगिक क्रियाओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है ।
- 4- भाव की उत्पत्ति परिस्थिति के प्रत्यक्ष अनुभव के अतिरिक्त स्मृति व कल्पना से भी हो सकती है ।
- 5- भाव व्यक्ति की उत्तेजक अवस्था है ।

§ न॥ भाव एवं सहज प्रवृत्तियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

=====

सहज प्रवृत्तियों एवं भावों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । दोनों ही

1- सि० यदुनाथ सिंह, मनोविज्ञान (१९६०), पृ० १४.

2- आर० ए० बुडवर्थ, साइकलाजी (१९२४), पृ० ३००

3- विलियम मैकडुगल, एन आउट लाइन ऑफ साइकलाजी (१९४६) पृ० ३१६-१७

अवचेतन मन की निधि हैं । प्रत्येक भाव के मूल में तत्सम्बन्धी सहज प्रवृत्ति सम्निहित रहती है ।

अतः सहज प्रवृत्ति और भाव के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :-

सहज प्रवृत्ति	सम्बद्ध भाव
काम	कामुकता
संतति पालन	वात्सल्य
सामाजिकता	एकाकीपन
पलायन	भय
विकर्षण	घृणा
युयुत्सा	क्रोध
संग्रह की प्रवृत्ति	अधिकार की प्रवृत्ति
निर्माण की प्रवृत्ति	कृति भाव
भोजनोपार्जन की प्रवृत्ति	भूख
दैन्य की प्रवृत्ति	करुण
आत्मसमर्पण की प्रवृत्ति	आत्महीनता
जिज्ञासा की प्रवृत्ति	आश्चर्य
आत्मगौरव	आत्माभिमान
हास्य	आमोद - ¹

कुछ मनोवेत्तानिकों ने उपर्युक्त वर्णिकरण को अंगित माना है । उनके अनुसार क्रोध सदैव युयुत्सा से उत्पन्न नहीं होता एवं क्रोध और भय आगिक दशाओं के रूप में साम्य रहते हैं । घाहे आवेगों में अन्तर है । -2 सहज प्रवृत्तियों के कार्य में भाव अनिवार्य बहोते होते । -3 जहां तक क्रोध

1- डा० बनेन्द्र - रीतिकान्य की भूमिका , पृ० 74

2- डा० कदुनाथ सिन्हा - मनोविज्ञान । 1960 ।, पृ० 251

3- डिक्शनरी ऑफ टेक्नीकल टर्म्स । 1962 ।, ग्रन्थ - 1, पृ० 496

और युयुत्सा का सम्बन्ध है क्रोध दुःख के घेतन कारण के साक्षात्कार अथवा अनुमान से उत्पन्न होता है जबकि युयुत्सा में व्यक्ति के मानस में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है । इस स्थिति में यदि उस अन्तर्द्वन्द्व का कारण समझ हो तो क्रोध की उत्पत्ति होती है । अतः उपर्युक्त आरोप निराधार है । इसी प्रकार सहज प्रवृत्ति के मूल में भाव अनिवार्य होता है । वह व्यक्ति के व्यपेक्षित में रहती है और विशेष परिस्थिति में उसका प्रकटीकरण हो जाता है ।

सहज प्रवृत्तियों एवं भावों का भारतीय रस सिद्धान्त से भी साम्य है । सहज प्रवृत्तियाँ समस्त भावात्मक प्रवृत्तियों के मूल में विद्यमान होती हैं । भारतीय शाब्दावली में इन्हें वासना कहा गया है । अभिनव गुप्त ने वासनाओं के व्यक्त रूप को स्थायी भाव और स्थायी भाव के अव्यक्त रूप को वासना माना है । इस प्रकार भाव तथा सहज प्रवृत्तियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है ।

मनोभाव, स्वरूप और विकास

=====

हिन्दी में सेंटिमेंट के लिए मनोवृत्ति, भावना, मनोभाव आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है । " मनोभाव " शब्द सेंटिमेंट के पर्यायवाची शब्द के रूप में है । "सेन्टीमेंट" शब्द का सम्बन्ध लैटिन के " सैन्टाइस " शब्द से है । इस शब्द के द्वारा केवल अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं होती बल्कि एक मिश्रित दृष्टिकोण जिसमें अनुभूतियों का एक वर्ग निहित होता है । उसके लिये प्रयुक्त किया जाता है । -¹ मनोभाव के मूल में सहज-प्रवृत्तियों और भावों का वही स्थान होता है जो कि बीज में अंकुर का । विभिन्न मनोवेज्ञानिकों ने मनोभाव के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

मैक्डुगल महोदय सेंटिमेंट को भावात्मक सदिशों की एक संगठित

1- एन साइकोविशियल ग्लोसेनिका, ग्रन्थ - 20, पृष्ठ 330

क्रिया मानते हैं जो किसी आलम्बन विशेष द्वारा विकसित होती है । -1

जब कोई भाव बार बार वस्तु विशेष के कारण उद्दीप्त होता रहता है ।

तो वह स्थिर हो जाता है तथा उसकी मूल अवस्था निर्मित हो जाती है । -2

डा० नगेन्द्र "सेटीमेंट" को मनोवृत्ति के रूप में ग्रहण करते हैं । उनके अनुसार मनोवृत्ति एक व्याप्त मनःस्थिति मात्र है, जिसके समग्र रूप का अनुभव कभी नहीं हो सकता । इसके संचारी का ही आस्वादन हो सकता है, मनोवृत्ति स्वयं का नहीं । मनोवृत्ति सदैव विचार स्रोत है । -3 इसी प्रकार

डा० राजेन्द्र गुप्त "सेटीमेंट" को एक मानसिक प्रवृत्ति मानते हैं । -4

श्री बी०एन० झा ने व्यक्ति के तत्वों एवं भावों के दृढ़ योग के अर्थ में "सेटीमेंट" को स्वीकार दिया है । -5 कैलटाउन "सेटीमेंट" को किसी वस्तु अथवा पुरुष से सम्बद्ध भावात्मक प्रवृत्तियों तथा विद्वानों का लगभग एक स्थायी एवं संगठित रूप मानते हैं । -6

मनोभाव भावात्मक आवेगों की एक संगठित क्रिया है । अतः मनोभाव जन्मजात न होकर अर्जन की क्रिया है । हम अपने दैनिक जीवन में अनेक वस्तुओं से जाग स्थापित करते हैं उसके विपरीत कुछ वस्तुओं के प्रति घृणा भी करते हैं । यह विभिन्न विचार धाराओं से सम्बद्ध है । एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिए घृणा का पात्र हो सकती है, परन्तु दूसरे के लिए वही प्रेम

1- विलियम मैक्डगल - एन आउट लाइन आफ सोसियल साइकलाजी, पृ० 137

2- विलियम मैक्डगल- इन इन्ट्रोडक्शन टू सोसियल साइकलाजी, पृ० 140

3- डा० राजेन्द्र गुप्त - साइकलाजिकल स्टडीज इन रासा, पृ० 126

4- श्री बी०एन० झा, मार्डन एजुकेशनल साइकलाजी, पृ० 160-61

5- श्री बी०एन० झा, मार्डन एजुकेशनल साइकलाजी, पृ० 160-61

6- सी० डब्ल्यू कैलटाइन, साइकलाजी, पृ० 163

का भाजन भी । मनोभाव एक अलग भाव नहीं होता बल्कि इसके मूल में विभिन्न भाव एवं सहज प्रवृत्तियाँ क्रियाशील रहती हैं । यह एक स्थायी केषटात्मक प्रवृत्ति है । उदाहरण के लिए यदि हम किसी को प्रेम करते हैं तो उसके न होने पर हमें दुःख होता है तथा उसको चोट पहुँचाने वाले के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है । यही प्रेम और क्रोध दो अलग अलग भाव हैं, परन्तु दोनों मिल कर एक मनोभाव का स्वरूप धारण कर लेते हैं । मनोभाव एक जन्मजात प्रवृत्ति न होकर एक अर्जित प्रवृत्ति है जो विभिन्न अनुभूतियों से पुष्ट होकर तथा विभिन्न भावों से संगठित होकर शक्तिशाली रूप धारण करता है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोभावों का स्थान
=====

वात्सल्य भाव :

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में वात्सल्य भाव का मनोवैज्ञानिक आधार पर वर्णन किया गया है । यशोदा कृष्ण की स्नेहमयी माँ के रूप में चित्रित की गई हैं । इनके हृदय में कृष्ण के प्रति अपार प्रेम है । जब तक कृष्ण आँगन में खेलते हैं, ब्रज में क्रीड़ाये करते हैं, तो वह बहुत प्रसन्न होती हैं । यशोदा सब प्रकार सन्तुष्ट हैं । यथा -

पूर्ण लाम में बनी रहे तस,

तेरी छत्रछाया ।

तेरा दिया राम सब पाये,

जैसा मैं पाया । -1

कृष्ण की बाल क्रीडाओं में यशोदा को लोकोत्तर साहस और आलौकिक रूप दिखाई देता है । वेहठ हर्ष से उभंग में भर कर आत्मोद्गार प्रगट करने लगती हैं । उनके बाल गोपाल कोई अवतारी हैं । उनके उपद्रवों

की शिकायत लेकर ब्रज बालायें नित्य प्रति जाती रहती हैं । लेकिन माता यशोदा उनके बाल सौन्दर्य का ध्यान करती हुई आनन्द में मग्न हो जाती हैं -

मेरे बचाम सलोने की है,
मधु से मीठी बोली
कुटिल अलक वाले की आकृति
है क्या मोली भाली । -1

यशोदा वात्सल्य भावनाओं की प्रतिमूर्ति हैं । वह अत्यन्त उदार और स्नेहमयी हैं । उनके हृदय की कोमल भावनाओं का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित किया गया है । यशोदा कृष्ण से अत्यन्त प्रेम करती है, वह कृष्ण को पाकर गर्व नहीं करती हैं -

गर्व नहीं यह कृतज्ञता है
मैंने जिसे जनाया
बाहर मैं जन मान्य लौर
धन धान्य पूर्ण घर मेरा
पाया है तब देने को भी
प्रस्तुत है कर मेरा ॥ -2

कृष्ण के मधुरा गमन पर यशोदा को कृष्ण की ममता व्यथित किए हुए हैं । यशोदा पुत्र वियोग जनित व्यथा से व्याकुल होकर जगद्धामिका से प्रार्थना करती है :-

कलुषनाशिनि दुष्ट - निकदिनी ।
जगत की जननी भव वल्लभे ॥
जननि के जिय की सकला व्यथा
जननि ही जिय है कुछ जानता ॥ -3

1- द्रापद, पृ० 22

2- द्रापद, पृ० 26

3- प्रियव्रतवास, पृ० 28

जननी के "जिय की" अवस्था एक जननी ही जान सकती है। नारी की मनोवेज्ञानिक मनोवृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है। अक्षर द्वारा कंस का सन्देश सुन कर ब्रज का प्रसाद पूर्ण वातावरण अक्सादपूर्ण हो जाता है। कंस ने कृष्ण को आमन्त्रित किया है, यह सोच कर माँ यशोदा चिन्तित है। किन्तु कहीं कृष्ण जग न जाएँ, अतः यशोदा -

पट हटा सुत के मुख की
चिक्कता अब थी अवलोकती
चिक्का सी जब थी फिर देखती
सरलता, मृदुता, सुकुमारता ॥⁻¹

माँ यशोदा दो चिन्ता लगी है कि मार्ग प्रचण्ड आत्म पूर्ण है, कहीं कृष्ण जी कुम्हला न जायें। उन्हें कृष्ण की प्रतीक्षा लगी रहती है। अनेक व्यंजनों से भोजन तैयार यशोदा -

प्रतिदिन जितने ही देवता थी मनाती
बहु यजन कराती विष्णु के वृन्द से थी
नित घर पर कोई ज्योतिषी थी जुलाती
निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा ॥⁻²

मातृ हृदय का मनोवेज्ञानिक विश्लेषण और वात्सल्य भाव दर्शनीय है। यशोदा के समान नन्द भी आने पुत्र के लिए आतुर हैं, किन्तु वे पुरुषोचित गम्भीरता तथा संयम धारण किये हैं। पुत्रों को मथुरा पहुँचा कर नन्द घर लौट आते हैं। कृष्ण के विरह में विक्षिप्त और उद्भ्रान्त यशोदा कृष्ण को न पाकर कृष्ण कुन्दन करती हुई कृष्णात्मक स्वर में पूछती है -

1- प्रियप्रवास, पृ० १६.

2- प्रियप्रवास, पृ० ६२

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?

दुःख जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है ? -1

वह "कहाँ" है? की हृदय द्रवी ध्वनि पठोर तम हृदय में भी कोमलतम भावनाओं को उद्भूत करने में समर्थ है। यह कृष्ण पुकार अन्तस्थल के मर्मस्थल को स्पर्श कर द्रवित कर देती है। यशोदा - उदय संवाद में मातृहृदय के कृष्णपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति है, किन्तु नन्द और यशोदा के संवाद में तो कृष्ण की लहर तीव्र वेग से उमड़ पड़ती है। इस प्रकार वात्सल्य रस में कृष्ण - वत्सल भाव का मिश्रण है।

यशोदा और देवकी कृष्ण को वात्सल्य भाव से देखती हैं। यशोदा जानती है कि दृष्ट साक्षात् अवतार है। वह उनके साथ पूर्ण ज्ञानन्द का अनुभव करती है। कृष्ण के प्रति देवकी का वात्सल्य भाव प्रस्तुत है :-

अरे देख तू यहाँ रही यह, तेरी दुखिया भैया ।

बोल कहाँ तू दुँवर कन्हैया, मेरे राजा भैया ॥

सुनू तनिक मैं भी वह मुरली, देखू दोहल तेरा ।

रहे न मुझको शंकाद ही, मेरे मोहल तेरा ॥

सख्य भाव

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में ग्वाल बाल कृष्ण के प्रति सख्य-भाव रखते हैं। वे कृष्ण के प्रति अटल विश्वास रखते हैं। वे इतने भाव - विभोर हो जाते हैं कि अपने को कृष्ण का हाथी छोड़ा कहलाते हैं। यथा -

हम हाथी छोड़े हैं उसके

यमुना उसकी पालकी ।

बलिहारी बलिहारी, जय जय

गिरहारी गेषाल की ॥ -2

1- प्रिय प्रणमस 354 शीतल, पृ० 46

2- उदय-शतक, पृ० 46

गवाल बाल आनन्द में मग्न होकर रास के उल्लास का वर्णन करते हैं । निर्मल चन्द्रमा के विकास के समय रास अनुपम आनन्द की सृष्टि कर रहा है -

निर्मल नीलाकाश रास मग्न
 चमके चन्द्र विकास में ।
 दमके कल जल गम के थल थल
 हो के आनन्दोल्लास में ।
 लय से बैधा अराल काल भी
 डूबे रासोल्लास में । । -1

गवाल बाल कृष्ण से प्रेम करते हैं । उनकी अभिप्रेत सत्य भाव ली है । वे कृष्ण के शारीरिक और गुणों से प्रभावित हैं । वे कृष्ण की लीलाओं से घुसा रहते हैं । कृष्ण के भरों पर सांसारिक सभी चिन्ताओं को त्याग देते हैं -

चिन्ता करे बलाय हमारी
 जगती के जंजाल की । -2

गोपकुमारों के मध्य जब उदङ्ग श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाते हैं तब एक गोप कातर होकर कह उठता है -

मुकुन्द चाहे यदुका के बनें
 सदा रहें या वह गोप-का के
 न तो भकेगी ब्रज भूमि भूल ये
 न भूल सकेगी ब्रज मोदिनी उन्हें ।। -3

1- उदङ्ग-सत्त्व 577, पृ० 68

2- वही पृ० 68

3- प्रिय-प्रवास, पृ० 167

स्थोम शृंगार भाव

राधा-कृष्ण को अपना प्रति मानती है । वह प्रेम के द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करना चाहती है । वह कहती है -

झुक वह वाम कपोल घूम ले
यह दक्षिण खतरा हरे ।
मेरा जोर सार इस लय में
हो जाये विध्वंस हरे ॥ -1

राधा को पाकर कृष्ण धन्य हो जाते हैं । इसी कारण राधा अपने प्रेम को तुष्ट - प्रेम कहती है -

मेरे तुष्ट प्रेम से तैरती
बुझ न सकेगी क्षुधा हरे
निज पथ धरे घना जाना तु
अल मुझे सुधि सुधा हरे ॥ -2

कृष्ण जब गौवर्द्धन पर्वत को उठाते हैं तो उन पर राधा की दृष्टि पड़ जाती है । राधा की दृष्टि पड़ते ही उनके अन्दर कम्प पैदा हो जाती है -

राधा जी के भरे नयन में,
प्रलय किया था नीर ने
किन्तु पुलक ही दी राधा के
कोमल कुसुम शरीर ने ॥ -3

कुब्जा में कृष्ण के प्रति रति-भाव उत्पन्न होता है । कृष्ण आलम्बन है, कुब्जा आश्रय, कृष्ण का सुन्दर स्वरूप तथा मुस्कराना उद्बोधिपन है -

1- दापर, पृ. १५

2- वही, पृ. १४

3- वही, पृ. ६२

बाँधे कर से सिर सम्भाल कर
 धर दाँये से ठोड़ी ।
 किया मुझे उत्कर्षित उसने
 शक्ति लगा कर थोड़ी ॥
 चिबुक छिला कर छोड़ मुझे फिर
 मायावी मुसकाया ।
 हुआ नया स्पन्दन उर में
 पलट गई यह काया ॥ -

विप्रलम्भ शृंगार

विप्रलम्भ का स्थायी भाव रति होता है । कृष्ण काव्य में
 विप्रलम्भ शृंगार का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया गया है । श्रीकृष्ण के
 मथुरा गमन से गोपियाँ और राधा दुःखी हैं । राधा तो विरह की
 साक्षात् प्रतिमा हैं, वह अपनी सुष-बुध भूल जाती हैं । विरह की विभिन्न
 अवस्थाओं का मार्मिक चित्रांकन कृष्ण काव्य में किया गया है । राधा की
 ऐसी अभिलाषा नितान्त मनोवैज्ञानिक है । कृष्ण के चरणों पर हृदय अर्पित
 कर दिया है तो उन पर विविध पूर्वक पूर्ण समर्पण कर दिया जाये -

हृदय चरण में तो मैं छटा ही चुकी हूँ ।

सर्वविध चरण की थी कामना और मेरी ॥

भावी विरह के विषय में चिन्ता का होना स्वाभाविक है कि एक
 पल जिसकी प्रतीक्षा में युग समान व्यतीत होता था, अब उन्हें देखे बिना
 घटिया, पल और दिन कैसे व्यतीत होंगे -

यदि कल मथुरा को प्राप्त ही जा रहे हैं

बिन मुझ अवलोकने प्राण कैसे रहेगें

युग सम घटिकाएँ बाट की बीसली थीं

ससि दिवस हमारे बीत कैसे सकेंगे ।

राधा कृष्ण के वर्ण वाली वस्तु अथवा जीव को देखती हैं तो उन्हें कृष्ण की स्मृति ताजा हो जाती है। वह मधुकर को सम्बोधित करके कहती है -

मधुकर सुन तेरी श्यामता है न वैसी
अति अनुपम वैसी श्याम के गात की है
पर जब जब जाँचें देख लेती तुझे है
तब तब सुधि आती श्यामली मूर्ति की है ॥

गुणों के कारण प्रीति होती है और प्रीति के कारण गुणों की प्रतीति होती है। राधा अपने कृष्ण के गुण - तथ्य के द्वारा विरह में सन्तप्त हृदय को तृप्त करती हैं -

अपूर्व ऐसा धनश्याम रूप है
तथैव वाणी उनकी रत्नाल है।
निकैत वै है गुण के, विनीत है
विशेष हो गी उनमें न प्रीति क्यों ?

विरह के वेग में उद्देग अत्यन्त स्वाभाविक है। ज्योतिस्मान होती प्रतीत होती है। तनिक सी आहट लौ भी राधा बौंक उठती है -

सति भय यह कैसा गेह में छा गया है।
पल - पल जिहसे में आज यों बाँकती हूँ।
कै कर गृह में की ज्योति छाई हुई भी।
क्षण - क्षण अति मैली क्यों हुई जा रही है ?

विरह वेदना जब तीव्र तम हो जाती है तब एक प्रकार का उन्माद सा हो जाता है। विभिन्नतावस्था में ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कृष्ण पास हैं, पर खोसते नहीं हैं, कठोर हो गये हैं। राधा को उन्मादावस्था में कृष्ण ही सर्वत्र दीख पड़ते हैं। ऐसी अवस्था विभिन्न अथवा उन्माद की होती है, जब विरह की लहर मस्तिष्क के बाँध को लाँघ जाती है -

मे होती हूँ विकल पर तू बोलता भी नहीं है ।
 क्या ए तेरी विपुल रसना कुण्ठता छे गई है ?
 तू क्यों होगा सदैव दुःख क्यों दूर मेरा करेगा ।
 तू काँटों से जनित यदि है काठ सा जो तला है ॥

विरहावस्था में वृष्णि की स्थिति से अतीव दुःख रहता है -

कहे रत्नाकर न धन दिन - रेन परे
 सुजी पतछीन भई तरुनि जी रहे ॥

उद्वेग से जान दा सन्देश सुन कर गोपियाँ जड़ता की स्थिति को प्राप्त होती है :-

कोऊ सेद सानी, कोऊ भरि दग पानी रहीं
 कोऊ धूमि - धूमि परीं भूमि मुरशानी है ।
 मूर्छा की स्थिति में -

त्यो ही वखु धूमि केसुव भए के हाय
 पाँय परे उछरि अभाय मुख छायो है ।

गोपियाँ कृष्ण को सन्देश भेजती हैं । मरण की स्थिति में -

स्याम सौं हमारी राम राम कहि दीजियो ।

इस प्रकार कृष्ण काव्य में विरही के मन की सभी स्थितियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है । कृष्ण के विरह में राधा और गोपियाँ विरहाकुल हैं ।

रागात्मक मनोभाव

रागात्मक प्रवृत्ति एक जन्मजात प्रवृत्ति है । प्राकृतिक के अनुसार बच्चे में प्रारम्भ से ही काम वासना के सक्रिय और क्रियाएँ विकसित रहती हैं ।

वह उन्हें अपने साथ ही संसार में लाता है । उसे परिपक्वता तक नहीं रुकना पड़ता । उस वात्स्यायन की काम वासना के चिह्नों से ही कई विद्वानों में विकसित होने के बाद ही व्यस्क स्तर की काम वासना प्रकट होती है । प्रबुद्ध ने मनो काम वासना में विकास के अनुसार तीन प्रमुख स्तर माने हैं :-

॥ 1 ॥ बाल - कामवासना ।

॥ 2 ॥ जङ्गम्यता - अवस्था और

॥ 3 ॥ व्यस्क अवस्था ।

मेघदूत के अनुसार भी दो प्रेमियों के पारस्परिक भावात्मक दृष्टिकोण में काम की स्थिति अनिवार्यतः होती है । भेले ही वे परिष्कृत भाव से मिलते हों । प्रेम मनोभाव उस अवस्था में उत्पन्न होता है जब एक व्यक्ति का आकर्षण दूसरे के लिए इस सीमा तक पहुँच जाय कि दूसरे के सान्निध्य सुरक्षा एवं उसकी प्रसन्नता में ही सहाय्यता होने लगती है । आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में कवियों ने प्रेम को व्यक्ति की आवश्यकता का वर्णन किया है ।

विरागात्मक मनोभाव :

आकर्षण और विकर्षण, रुचि और अरुचि तथा प्रेम और घृणा मानव की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। दृश्यमान जगत् की जिन वस्तुओं एवं प्राणियों के प्रति हमारे हृदय में राग उत्पन्न होता है वह रागात्मक प्रवृत्ति कही जाती है। इसके विपरीत कुछ वस्तुओं या प्राणियों से घृणा या क्रोध का भाव जाग्रत होता है, वे विरागात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। प्रेम या राग से हम किसी वस्तु या प्राणी के प्रति आकृष्ट होते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, अपनाते का प्रयत्न करते हैं और उनके अभाव में व्याकुल होते हैं। इसके दूसरी ओर घृणा के कारण किसी व्यक्ति या वस्तु से दूरी हटते हैं, दूर रहने का प्रयत्न करते हैं। सृष्टि विस्तार से अभ्यस्त होने पर प्राणियों को कुछ विषय रूचि और कुछ अरुचि प्रतीत होने लगते हैं। इन अरुचि विषयों के उपस्थित होने पर अपने जान पथ से उन्हें दूर रहने की प्रेरणा करने वाला जो दुःख होता है, उसे घृणा कहते हैं।¹ किसी वस्तु में दुर्गन्ध या कुस्वाद होने के कारण घृणा करते हैं या गन्दी वस्तुओं के स्पर्श से बचते हैं। इस प्रकार जुगुप्सा के दो रूप हुए - §1§ मौखिक और §2§ स्पर्शजनक § त्वचा §।² यदि हमारी उदासीनता अथवा घृणा की प्रतिक्रिया स्वरूप कोई व्यक्ति हानि पहुँचाने की कोशिश करता है तो हमारे हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है। इस अवस्था में यदि हमारा विरोधी शक्तिशाली है तो निश्चय ही हम में भय उत्पन्न होगा और हमें पलायन की प्रवृत्ति में प्रवृत्त हो ना पड़ेगा। इसके दूसरी ओर विरोधी यदि समान या कमजोर है तो संघर्ष की हो सकता है। अतः युद्ध की प्रवृत्ति का मूलधार भी क्रोध है। इसकी उत्पत्ति किसी घेष्टा के प्रतिरोध या विपन्नता के कारण होती है।

1- विलियम मेकडुगल - एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियल साइक्लाजी - पृ० 97

2- विलियम मेकडुगल - एन आउट लाइन ऑफ साइक्लाजी, पृ० 141

क्रोध की प्रवृत्ति का मुख्य लक्ष्य आत्मस्वन में भ्रम का संवार करना होता है। क्रोध करने पर यदि वह सामने उट जाता है तो लक्ष्य नीचा दिखाना या नष्ट करना होता है। क्रोधावस्था में व्यक्ति का मानसिक संतुलन असंतुलित होता है। चाणी शब्दों को उचित अभिव्यक्ति नहीं दे पाती है। अतः लाल तथा घेहरा तमतमाया हुआ होता है।

आधुनिक हिन्दी दृष्टि काव्य में क्रोध, धृणा एवं युद्ध यदि घिरागात्मक मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। मानव जीवन में कभी-कभी परिस्थितिका युद्ध भी आवश्यक हो जाता है। युद्ध-भावना, क्रोध मनोभाव की घरम सीमा है। क्रोधावस्था में आगिक घेष्टाओं में तीव्रता उत्पन्न हो जाती है। क्रोध बाह्य तथा आन्तरिक दोनों ही धरातलों पर चिह्नित होता है। युद्ध, अवचेतन में विकसित क्रोध की बाह्य अभिव्यक्ति है। शीत युद्ध भी अन्तर्गत में व्याप्त क्रोध मनोभाव का ही परिणाम है। समस्त संसार में बाह्य और आन्तरिक रण छिड़ा हुआ है। शान्ति का उपदेश युयुत्सा की भावना को आवृत्त करने का साधन है।

हास्य मनोभाव :

हास्य की महत्ता जितनी साहित्य में है उससे भी कहीं अधिक दैनिक जीवन में है। व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए अपने विकृत विचारों तथा दुःख को भूल जाता है। शारीरिक रूप यदि हास्य रुचि संवादन को मस्तिष्क तक पहुँचाने तथा श्वसन क्रिया में लाभकारी है तो दूसरी ओर मानसिक व्यथाओं तथा चिन्तन प्रणाली में अवरोधन कर नयी स्फूर्ति उत्पन्न करता है। -1

संस्कृत काव्य शास्त्र में हास्य को रस के रूप में स्वीकार किया गया है, परन्तु पाश्चात्य काव्य शास्त्र में इसे मनोभावों की पंक्ति में रखा गया है। भरत मुनि ने शृंगार से हास्य की उत्पत्ति स्वीकार करते हुए इसे शृंगार की अनुवृत्ति मात्र माना है। -2 धनञ्जय के अनुसार हास्य की उत्पत्ति के कारण अपनी या दूसरे व्यक्ति की विकृत वेशभूषा, चेष्टा, शब्दावली या क्रिया क्लाप है। -3 साहित्य दर्पणकार भी वाणी, चेष्टा तथा आकार आदि की निरूपित से हास्य का आविर्भाव मानते हैं। -4

वर्गसन के अनुसार मनुष्य जब अपनी नैसर्गिक स्वतन्त्रता को छोड़कर यन्त्र की तरह काम करने लगता है तब वह हास्य का विषय बन जाता है, जैसे कोई मनुष्य रास्ता चलते चलते फिसल पड़े तो वह लोगों की हँसी का भाजन बन जाता है। मनुष्य तभी गिरता है जब वह अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता को भूल कर जड़ मशीन के समान आचरण करने लगता है। यह भी एक तरह की विकरालता है। मनुष्य अपने स्वभाव से विकराल चलता है। -5 थामस

1- विनियम मेकडूगल - एन आउट लाइन आफ साइकलाजी, पृ० 166

2- शृंगारादि भेद हास्यों - भरत मुनि - नाट्य शास्त्रम्, 6/39, पृ० 295

3- धनञ्जय : दश रूपक, प्रकारा 4, पृ० 75

4- विवनाथ - साहित्य दर्पण, परिच्छेद-3, पृ० 214

5- हेनरी वर्गसन: लाफ्टर , पृ० 9-10

डाक्स ने हास्य की उत्पत्ति का मुख्य कारण आकस्मिक या माना है।
जबकि हरबर्ट स्पेन्सर ने नाड़ी-तन्त्र के अतिरिक्त शक्ति प्रवाह को।
प्रो० वर्गसन के अनुसार हास्य सामाजिक दायित्व स्थापित करता है। -¹
मेक्डगल के अनुसार हास्य सहानुभूति का प्रतिबिम्ब होता है। -²

आचार्य विश्वनाथ ने हास्य के छः भेद स्वीकार किये हैं - स्मित,
हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित।³ स्मितावस्था
में व्यक्ति के दाँत नहीं दिखाई देते हैं, बल्कि उसके कपोलों पर सिक्कन,
आँखों में चमक तथा लोठों पर क्लाय लक्षित होता है। हसितावस्था
में कुछ दाँत दिखाई देने लगते हैं, परन्तु शब्दों का प्रकटीकरण नहीं हो पाता
है। विहसितावस्था जहाँ स्त्राब्द होती है तो दूसरी ओर उपहसितावस्था
में शारीरिक अवयवों जैसे सिर कन्ध तथा दृष्टि में तनाव उत्पन्न हो जाता
है। हसितावस्था में हास्य का चरमोत्कर्ष होता है तथा व्यक्ति को पेट
तक पकड़ना पड़ता है।

पाश्चात्य विचारकों ने हास्य के भेद भारतीय वर्गीकरण से भिन्न
रूप में किये हैं। प्रसिद्ध कलाकार होगार्थ ने पिरसी प्रहसन का अभिनय
देखते हुए कुछ पाश्चात्य हास्य रसाचार्यों का एक चित्र अंकित किया है,
जिसमें उन्होंने बड़े कोशल के साथ उनकी भावभंगी का सजीव चित्रण करते हुए
वहाँ के हास्य साहित्य की अपने ढंग से विशद आलोचना की है। एक ओर
अरिस्टोपेनीज की उन्मुक्त हँसी है तो दूसरी ओर जुवेनल का उद्धदीप्त कठोर
हास्य, इधर सर्व टीज यथेष्ट संयम के साथ बड़े आदमियों की भाँति आंगस
स्वात्म्य के विरोधियों पर अपने झंझर और क्षुण्णपूर्ण अदृष्टवास के द्वारा
प्रहार कर रही है। इसी प्रकार उन्होंने और लेखकों का भी दिग्दर्शन
कराया है।

1- प्रो० वर्गसन, लाफर, पृ० ६१८

2- मेक्डगल - एन आउट लाइन आफ साइकलाजी, पृ० 165-66

3- साहित्य दर्पण - टीका : डा० सत्यकृत सिंह, पृ० 252

पश्चिमी साहित्य में सदैव हास्य का एक प्रमुख स्थान रहा है । उनका घात - प्रतिघात मध्य भौतिक जीवन रोना और हसना ही अधिक जानता है । इसलिए रस का विवरण वे कल्प और हास्य पर लिख कर ही प्रायः समाप्त कर देते हैं । -¹ पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य के पाँच किये हैं :- स्मित हास्य, वाञ्छल, व्यंग, वक्रोक्ति और प्रहसन । -²

स्मित हास्य - हास्य का उत्कृष्ट रूप है । यह एक मानसिक वृत्ति है । आलम्बन के प्रति सहानुभूति स्मित की जड़ है । ईर्ष्या से प्रेरित होकर कलाकार सब कुछ कर सकता है, परन्तु स्मित का चित्रण नहीं कर सकता । स्मित वा सम्बन्ध हास्यास्पद के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति से होता है । यदि स्मित हास्य में कटुता तथा सौदृश्यता आ जाती है तो व्यंग तथा वक्रोक्ति का रूप बन जाता है । हास्य में मसता रहती है, जिस पर हँसि वह प्रिय भी हो सकता है, वही तरह घास स्मित घास है । "विट" के अन्तर्गत शब्दों के विवेक की मितव्ययता तथा वेदगंधता होती है । व्यंगों की विदग्धता के कारण जो उचित चमत्कार उत्पन्न होता है वही "विट" है । यह हास्य का बौद्धिक झोत है । परन्तु रस और चमत्कार दोनों का होना अनिवार्य है । जब हास्यास्पद का घटना मजा उड़ाते हैं कि उसमें दयालुता समाप्त हो जाती है तो हास्य व्यंग की कोटि में पहुँच जाता है । व्यंगकार एक सामाजिक ठेकेदार होता है । बहुधा वह एक सामाजिक सबवाई करने वाला है जिसका कि काम गन्दगी के ढेर को साफ करना होता है । जब कभी हम कहते हैं कि यह होना चाहिए और दिखाते भी हैं जो कुछ किया जा रहा है उसमें हमारा विश्वास भी है, वहाँ वक्रोक्ति होती है । हमको ऊपर से ऊँचे उद्देश्य की भलाई दिखाने का बहाना करना पड़ता है, इस प्रकार वक्रोक्ति अन्दर से इतनी तीव्र हो सकती है कि

1- डा० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य में हास्य रस कीर्णा - नवम्बर 1937, पृ० 31

2- एन साइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड इथिक्स, न० जेम्स हेस्टिंग्स

हमें मालूम पड़े कि वह शक्तिशाली वस्तु है । पैरोडी एक हास्यपूर्ण कला है । इसके द्वारा नये कवियों की भद्दी तुकबन्दी की भी बड़ी अच्छी तरह छिल्ली उड़ायी जा सकती है । यह अनजाने लेखकों को यह बताती है कि उनकी शैली में क्या और कहां कमी है । व्यंग का हास्य किसी के मुँह अथवा पीठ पर घाव के समान है । प्रहसन का हास्य व्यक्तिगत नहीं होता । उसमें आशारणा नम्रता होती है जो अधिक से अधिक एक मुस्कान ला देती है । इसे मस्तिष्क का हास्य कहा जाता है । आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने हास्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

अहं मनोभाव :

अहं की प्रवृत्ति मानव तथा मानवेत्तर प्राणियों में भी पायी जाती है। प्रायः एक समूह के प्राणी अपना एक प्रधान चुन लेते हैं, जो उस समूह के पूरा शासन करता है तथा अन्य प्राणियों को उसमें व्यवधान उपस्थित नहीं करने देता है। उस समूह के प्राणी प्रधान के सामने अपना समर्पण या हीनता स्वीकार कर लेते हैं। यह अहं की भावना के कारण ही होता है। -1 यह प्रवृत्ति जानवरों में भी पायी जाती है। जब एक छोटा कुत्ता बड़े कुत्ते के पास जाता है तो वह दैन्य भाव से पटुयता है। इसके विपरीत बड़ा कुत्ता आत्माभिमान के साथ मिलता है। यह प्रवृत्ति अन्य जानवरों में भी पायी जाती है। -2

दार्शनिक दृष्टिकोण से अहं शब्द का अर्थ व्यवहारिक अविद्या से सीमित, ज्ञात से एकीकृत आत्मा है जो मैं और मेरे की भावना उत्पन्न करती है। यह अर्थ साहित्य में वेदान्त दर्शन से लिया गया है। प्राचीन साहित्य में, विशेष कर सन्त साहित्य में इस शब्द का यही अर्थ मिलता है। अहंकार और ममता इसी शब्द से विकसित हुए हैं। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में इस शब्द का प्रयोग मनोविज्ञान के विशिष्ट सन्दर्भ में होता है। अहं संसार और इड के बीच संसार मध्यस्थ का कार्य करता है। यह इड की मौलिक प्रवृत्तियों को संसार के यथार्थ के अनुरूप और संसार को इड की वासनाओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। इस प्रयास में यह प्रायः इड की वासनाओं का दमन करता है। दमित वासनाएं "इड" का एक अंग बन जाती हैं। अहं अधिकांश रूप में घेत्त माना गया है, लेकिन वासनाओं का दमन और अजरोध अघेत्त रूप से ही होता है। इस प्रकार अहं के घेत्त और अघेत्त दोनों ही रूप होते हैं। अहं व्यक्ति के बौद्धिक और व्यवहारिक पक्ष का नाम है। स्वस्थ मानसिक स्थिति में "इड"

1 मैकडगल एन आइलैण्डन साफ़ आइलैण्डजी, पृ० १५६

2 तैली

पृ० १५८

और "अहं" एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। इनका अत्यधिक विरोध ही मानसिक संघर्षों और व्यक्तित्व की समस्याओं का कारण होता है।

देन्य मनोभाव :

मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। जब वह परिस्थितियों से संघर्ष करते - करते हार जाता है तो वह उनसे समझौता करता है या टूट जाता है। यह उसकी देन्य स्थिति होती है, उसे अपने अहं को समर्पित करना पड़ता है। प्रेम तथा समर्पण में देन्य भाव का समावेश होना स्वाभाविक है। आधुनिक कृष्ण काव्य के कवियों ने इसका अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है।

पंचम - अध्याय

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व -

कला पक्ष

॥क॥ शैली सामान्य विवेचन

॥ख॥ शैली शब्द की मनोवैज्ञानिक व्याख्या

॥ग॥ आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक शैली

॥घ॥ बिम्ब- विधान

1- बिम्ब : शब्द का अर्थ

2- बिम्ब : मनोवैज्ञानिक व्याख्या

3- बिम्बों का वर्गीकरण

4- आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक
बिम्ब योजना

॥ङ॥ प्रतीक योजना

1- प्रतीक शब्द का अर्थ - मनोवैज्ञानिक व्याख्या

2- प्रतीकों का वर्गीकरण

3- आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक
प्रतीक योजना

पंचम - अध्याय
=====

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के मनोवैज्ञानिक तत्त्व : कला पक्ष

शैली : सामान्य चिन्ते
=====

शैली और साहित्यकार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शैली के अध्ययन से व्यक्तित्व के अध्ययन में भी सहायता मिलती है। यदि विचार और भाव कविता की आत्मा है तो शैली उसका शरीर है। शैली द्वारा ही कवि अपने भाव उक्त वा वाक्य को परिचय देता है। शैली की उत्कृष्टता ही साहित्यकार को गरिमा प्रदान करती है। एक सफल साहित्यकार के लिए यथा स्थान अपने मनोभावों के अनुस्यू शब्द, प्रतीक एवं चिह्न आदि का अंजन अति आवश्यक है।

शैली शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के "शील" शब्द से मानी जाती है। "शील" शब्द के व्यापक अर्थ द्वारा व्यक्ति की मनोवृत्ति आदत, व्यवहार, चरित्र आदि का बोध होता है।¹ इस प्रकार शैली व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित है। साथ ही इसका सम्बन्ध व्यक्ति के क्रिया - कलापों एवं रचना कौशल में भी है।

हिन्दी साहित्य में शैली शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "स्टाइल" शब्द के समानार्थक रूप में किया जाता है। मूलतः "स्टाइल" शब्द ग्रीक भाषा के "स्टाइलिस" § एवं लैटिन के "स्टाइलस" § शब्दों से सम्बन्धित है।² प्रारम्भ

1- डा० गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्य - विज्ञान, पृ० 209

2- आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी , पृ० 831

में "स्टाइल" शब्द से तात्पर्य लिखने की नोकदार कलम से माना जाता था, परन्तु धीरे धीरे इस शब्द के अनेक अर्थ प्रचलित हो गये जैसे - लिखने का ढंग, लिखित रचना, लेखक विशेषता की अभिव्यक्ति की विशिष्टता, बोलने का लहजा, रीति या प्रथा आदि।¹ इस प्रकार "स्टाइल" शब्द कवि की विशेषता तक पहुँचकर अब जीवन के अनेक क्षेत्रों में शैली" या "स्टाइल" अभिव्यक्ति की विशिष्टता से सम्बन्धित है।

अनेक विद्वानों ने "स्टाइल" शब्द को एक नियमित परिभाषा में बाँटने का प्रयत्न किया है। लेकिन अपनी व्यापकता के कारण यह शब्द किसी निश्चित परिभाषा के क्षेत्र में समाहित नहीं हो पाया है। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने छन्दों के साथ अर्थ भी कर दिया है। कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :-

जब विचार को तात्त्विक स्वरूप दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है।²

शैली से वाणी में वैशिष्ट्य है चमत्कार का समावेश होता है।³

- अरस्तु

किसी लेखक की शैली उसके गस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है।⁴

- गेटे

शैली आत्मा की मुद्राकृति है।⁵

- शापनहावर

यह वह अभिव्यक्ति [शैली] है, जो किसी कलात्मक अभिव्यक्ति पद्धति में विद्यमान व्यक्तित्व को सूचित करती है।⁶-शेरन

1- डा० गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्य का वैज्ञानिक विश्लेषण, पृ० 209

2- हिन्दी साहित्य कोश : डा० धीरेन्द्र वर्मा - पृ० 1230

3- डा० जयचन्द्र - अरस्तु का काव्य शास्त्र, पृ० 45

4- द न्यू डिक्शनरी ऑफ़ थाट्स द टू एडवर्ड्स, पृ० 641

5- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ लिटरेचर, पृ० 488

6- डब्ल्यू एच शेरन - ए हेण्ड बुक ऑफ़ लिटरेरी क्रिटिज्म, पृ० 84

इस अर्थ में शैली कलात्मक विक्रीष्टता ॥ या गुण ॥ या अभिव्यञ्जना शक्ति की पर्यायवाची है ।¹ - ग्रीनि

शैली भाषा की वह विक्रीष्टता है जो कवि के विशिष्ट भाव या चिन्तन को ठीक-ठीक रूप में प्रेषित करती है ।² - मरी

शैली कलाकार की वह वैयक्तिकता है जो ॥ कला के ॥ माध्यम तत्त्वों एवं संघटन में दिखाई पड़ती है ।³ - डडली

शैली वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरों से सम्पर्क स्थापित करता है । साहित्यिक शैली वह साधन है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को उद्दीप्त करता है ।⁴ -

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शैली और साहित्य-कार का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है । शैली में साहित्यकार के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का समावेश होता है । यही कारण है कि किन्हीं दो साहित्यकारों की शैली समान नहीं हो सकती । उसमें वहीं न कहीं भिन्नता दिखती है । लेखन की इसी विशेष प्रकृति को शैली कहा जाता है । साहित्यकार रविदशशील प्राणी होता है। बाह्य जगत की प्रत्येक घटना का उसके अन्तर्गत परतीक्षा प्रभाव पड़ता है । जब उसका मानस बाह्य स्विदनाओं से बोझिल हो जाता है तो उसकी भावधारा काव्य की विधाओं के

1- ग्रीनि : आर्ट्स एण्ड आर्ट क्रिटिज्म, पृ० 374

2- मिल्लेनान मरी : द प्रलेन आव स्टाइल पृ० 162

3- लुडक डडले : द इयूमनिटिज, पृ० 413 / पी

4- एक एल क्लेस, स्टाइल, पृ० 49

रूप में फूट पड़ती है। इस प्रकार के कवियों की शैली स्वयमेव सहज ग्राह्य एवं भावानुकूल होती है।

शैली शब्द की मनोवैज्ञानिक व्याख्या :

काव्य कवि के आत्म का अभिव्यक्त रूप है। उसके मानस में अनेक भाव लहरियाँ प्रवाहित होती रहती हैं जो आत्मप्रकाशन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती हैं। यह प्रयत्न दो प्रकार का हो सकता है - ११ अवचेतन और १२ चेतन। इनमें से अवचेतन मन का शैली निर्माण पर अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि उसमें बाल्यावस्था से लेकर सम्पूर्ण जीवन में घटित घटनाओं, संविदनाओं एवं भावनाओं का संचयीकरण होता रहता है। साहित्यकार के अवचेतन में सोई हुई संविदनाओं का ज्ञान भी नहीं होता परन्तु वे अनुकूल वातावरण पाने पर स्वयमेव अपना प्रभाव अंकित करती हैं। चेतनावस्था में प्रत्येक व्यक्ति दिवास्वप्नों की रचना किया करता है। परन्तु साधारण व्यक्ति उन्हें काव्य का रूप प्रदान ही कर पाता है। कवि या कलाकार इन्हीं दिवा स्वप्नों को काव्य में अंकित करता है। - १ कवि की भाव भूमि पर बाह्य जगत का प्रभाव जितना मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी होता है उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही प्राकृतिक, हृदय-स्पर्शी एवं प्रभावशाली होती है। इस प्रकार से निसृत काव्य में शब्द, लय, भाव आदि सभी एक तारतम्य के साथ अभिव्यक्त होते हैं और शैली एवं भावभूमि में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। - २

१- लिहरेवर एण्ड साइंस : प्रोसीडिंग्स ऑव द सिक्सथ ट्रेन्नी कॉन्फ्रेंस ऑक्सफोर्ड - १९५४, पृ० ६८

२- टी०एम० मरी : द प्रोब्लम ऑव स्टाइल , पृ० २४।

शैली पर साहित्यकार के शारीरिक, बौद्धिक भावात्मक एवं पारिवारिक पक्ष का विशेष प्रभाव पड़ता है। शारीरिक दृष्टि से यदि कोई कवि अंग-हीन है तो उसके मन में हीनता की ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। इस हीन-ग्रन्थि की प्रतिक्रिया स्वरूप वह शैली में विशिष्टता लाने की चेष्टा करता है। -1

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूर और जायसी ने विहीन थे परन्तु उनकी काव्य कला का सौन्दर्य अन्य कवियों से श्रेष्ठ है। इसी प्रकार बौद्धिक पक्ष शैली पर प्रभाव डालता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की सामान्य बुद्धि, ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति कल्पनाशक्ति, एवं चिन्तन-शक्ति को लिया जाता है। साहित्य में प्रयुक्त भाषा का व्यक्ति की ग्रहण शक्ति से प्रयुक्त तथ्यों का स्मरण शक्ति से, विभिन्न दृश्यों, परिस्थितियों एवं घटनाओं के वर्णन-चित्रण एवं वर्णन का कवि की कल्पना शक्ति से तथा नवीन विचारों का उत्पत्ति चिन्तन शक्ति से गहरा सम्बन्ध होता है। -2

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भावात्मक प्रवृत्तियों का शैली से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। भावात्मक पक्ष के तत्त्व अनुभूति, संवेदना, मनःस्थिति, भावावेग एवं भावना आदि शैली पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली परिवर्तन करते रहते हैं। इन भावों का सम्बन्ध हमारी वाणी, गति एवं द्रिया कलाओं से भी होता है। जब साहित्यकार सच्ची अनुभूति एवं भाव की धारणा प्रेरणा से प्रेरित होकर काव्य सृजन में प्रवृत्त होता है तो शैली के अनेक आकर्षक एवं आवश्यक तत्त्व

1- एच० एल० लुक्स : स्टडीज , पृ० 50

2- डा० गंगाधर पाण्डेय : साहित्य का वैज्ञानिक विश्लेषण, पृ० 222

आयास ही आकर साहित्य की भव्यता से माण्डित करते हैं। इसके विपरीत यदि इन तत्वों का सप्रयास प्रयोग किया जाये तो साहित्य रचना कृत्रिम, दुरुह एवं अग्राह्य सिद्ध होती है। हिन्दी के रीति-कालीन कवियों ने अपने काव्य में अलंकारों का समावेश सप्रसास किया था। परिणामस्वरूप वह काव्य अत्यन्त दुरुह एवं कृत्रिम हो गया है। इसके दूसरी ओर भक्ति कालीन कवि सूर, तुलसी, एवंकबीर आदि ने मुक्त दृष्टि से जो काव्य रचना की उसे हम हिन्दी के स्वर्ण-युग की संज्ञा देते हैं।

साहित्यकार की चारित्रिक विशेषताएँ शैली के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही रूपों पर प्रभाव डालती हैं। उसकी प्रकृति एवं स्वभाव का प्रभाव शैली की प्रकृति एवं स्वभाव पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि साहित्यकार की प्रकृति एवं स्वभाव ही शैली की प्रकृति एवं स्वभाव है। गम्भीर एवं शान्त कवियों की शैली भी गम्भीर होती है।

बौद्धिक मान्यताओं एवं आदर्शों द्वारा शैली को एक विशिष्ट दिशा मिलती है। हिन्दी कृष्ण काव्य के भारतेन्दु युगीन कवियों का दृष्टिकोण तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों की ओर अधिक था। यही कारण था कि भारतेन्दु युगीन काव्य शैली बोलचाल की भाषा से ऊपर नहीं उठ सकी। द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा - संस्कार, नीति, धार्मिकता एवं आचार वादिता आदि का तत्कालीन काव्य शैली पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

निस्तन्देह द्विवेदी जी की मान्यताओं ने एक नई दिशा प्रदान की। परन्तु काव्य-शैली उनकी मान्यताओं के फलस्वरूप

इतिवृत्तात्मक एवं उपदेशात्मक ही रही । छायावादी कवियों ने द्विवेदी युगीन काव्यशैली के प्रति विद्रोह किया । परिष्कृतस्वरूप भाषा में ज्ञातित्व एवं विभिन्न शैलियों का विकास हुआ । इसके अनन्तर प्रगतिवाद के राजनैतिक आन्दोलन के रूप में काव्य पटल पर आया । इसलिए काव्य-शैली में बोलचाल के शब्दों, वाक्यों एवं मुहावरों का समायोजन हुआ ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्य-शैली एक मनो-वैज्ञानिक सत्य है । उसमें कवि के समस्त जीवन की सीढ़नाओं की अभिव्यक्ति होती है । कवि के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं चारित्रिक प्रवृत्तियों का शैली - निर्माण में अपूर्व योग होता है । जो कवि अनुभूति को यथार्थ के धरातल पर चित्रित करते हैं, उनकी शैली भी उत्तरी ही स्वाभाविक, ओज एवं प्रसादपूर्ण होती है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्य में मनोवैज्ञानिक शैली का स्थान

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने मनोवैज्ञानिक शैली का पूर्ण निर्वाह किया है । उनकी शैली पर व्यक्तित्व के साथ प्रकृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा । मानव प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और उसका यह सम्बन्ध उसके अन्तर्मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होता है । इस सम्बन्ध में हृदय की गति स्पष्ट करती है । उसका यह सम्बन्ध भाव से होता है, बुद्धि से नहीं ।

मानव ने जब सबसे पहले जीवन के विषय में ज्ञान के निवारणार्थ विचार किया, तब उसे गत हुआ कि जीवन और प्रकृति का सम्बन्ध उद्बुद्ध है। यह फिर अभिन्न सम्बन्ध उत्कीर्ण चेतना को तब और भी अधिक कोमल और मुहर बना देता है, जब मनुष्य अपनी भावनाओं के अनुरूप ही प्रकृति के कण - कण में सुख दुःख देखता है। प्रकृति के विशाल प्रांगण में मानवीय वृत्तियों का प्रदर्शन आयास ही होता है और मनुष्य उससे प्रेरणा प्राप्त कर जीवन की सीमा रेखा में परिवर्तन करता है। इस रूप से कवि ने प्रकृति से प्रेरणा पाकर कविता का सृजन किया। प्रकृति व्यक्ति की अन्तः सविदना को जगा कर उसे विविध रूपा खाने का कार्य करती है, कवि को कल्पना देती है। कवि का आशय है अधिक काव्य प्रकृति का काव्य है और जो शेष है वह भी उन मानवीय सविदनाओं से घिरा है, जिनका उद्घाटन प्रकृति के माध्यम से किया गया है।

प्रकृति का व्यापक अर्थ में विचार करने पर गत होता है, कि उसके दो रूप हैं : - एक मानव प्रकृति, जिसका अध्ययन मनोविज्ञान में होता है - य. ० प्रकृति होती है + बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी। दूसरा मानवोत्तर प्रकृति : यह भी दो प्रकार की होती है नैसर्गिक और कृत्रिम। काव्य में प्रकृति चित्रण को प्रधानता दी जाती है, क्योंकि वह सभी समस्याओं में मानव की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। प्रकृति से सुख - दुःख दोनों विद्यमान हैं। पन्त जी के शब्दों में -

जग के दुःख देन्य शिखर पर यह रुग्ण जीवन बाला
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरख बाला ।। -।

कवि जब बहिर्मुखी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता है तो वह प्रकृति के बहिरंग वर्णन करता है। प्रकृति से मानव जीवन की सभी स्थितियों का तादात्म्य अनुभव करता है। उसकी मुस्कान पृष्ठों में और आँसू ओंसे में विद्यमान है। मानव और प्रकृति ये दो अभिन्न सृष्टि रूप हैं जब कवि की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी होती है, वह मानव प्रकृति के अन्तरंग और मानवेतर प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठता है। इस प्रकार आने से परे मानव प्रकृति जब विश्व की सीमाहीन परिधि की मानवेतर प्रकृति की ओर देखती है तब प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुपम सुषमा उसके मन मोह लेती है। ज्ञान की सीमा। इस प्रकार की मोहमयी उत्पन्न में ब्रह्मानन्द का आस्वादन करती है।

श्रीकृष्ण का जन्म प्रकृति के सुन्दर प्रांगण में हुआ था। एक गोपालक के घर जन्म लेने के कारण उनका परिचय और मोह दोनों ही प्रकृति से इतना अधिक था कि उनकी झीझारों में प्रकृति ने महत्वपूर्ण महत्वपूर्ण भाग लिया है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से चित्रण किया है, उन्होंने मानव प्रकृति और मानवेतर प्रकृति के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। प्रकृति चित्रण की विविध शैली अपनायी गई हैं :-

कवि जब प्रकृति के आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य से पूर्ण रूप से प्रभावित होता है तब वह चित्रांकन प्रवृत्ति को अपनाते हैं। कवि ने कृष्ण, महीने तथा अन्य प्रकार के बिम्ब ग्रहण करने के लिए चित्रात्मक प्रणाली को अपनाया है :-

स्वकीय प्रभाव से सदा

सदैव नीरोग वनान्त को बना

किसी गुणी वैद्य समान था सड़ा

स्व-निम्नता-गर्वित वृक्ष निम्ब का ।

प्रकृति चित्रण की पृष्ठा धारात्मक प्रणाली में मानवीय कार्य-कलाप को पृष्ठभूमि दी जाती है । यही पृष्ठभूमि आगे के लिए पूर्ण योजना सी बना देती है । यह पृष्ठाधार दो प्रकार का होता है अनुकूल और प्रतिकूल । अनुकूल पृष्ठाधार के रूप में -

गत हुई अब थी दि घटी निशा

तिमिर पूरित थी तब मैदिनी

बहु विमुग्धकारी वन थी नली

गगन मण्डल तारक -मालिका ॥ -१

उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण किया गया है । प्रकृति में मानव को उद्दीप्त करने की शक्ति विद्यमान है । प्रकृति के उस प्रत्येक पदार्थ को देख कर जिसका सम्बन्ध श्याम से था, राधा और गोपियाँ अधिक उद्दीप्त हो जाती हैं । ये सारे दृश्य उनके भावों को उद्दीप्त करते हैं और उनके कारण उनको तिरह वेदना और भी अधिक सन्तप्त करती हैं -

आना था तो तब आते तुम,

जब यमुना लहराती

अब तो महराती आती है ,

देखो यह लहराती ॥ -२

१- प्रिय प्रवास, पृ० १८

२- हापर, पृ० १६१

प्रकृति का आलम्बन के रूप में भी चित्रण किया गया है ।
जब प्रकृति में घेतनता छाग्रत की जाती है । इसमें प्रकृति भी मानव
के ही समान सुख दुख का अनुभव करती है तथा मनुष्य के समान ही
घेष्टार्ये करती हुई प्रतीत होती है -

आँख मिघौनी में वह भागा
हमने पकड़ न पाया ।
देर हुई तो घातक तक ने
रह रह कर शौर मचाया ॥
हँसा किन्तु भेदी पिक हा हा
हू हू कर हतराया ।
तब देखी ने नाच निकट ही
दृषया पता बताया ॥ -1

प्रकृति में लिम्ब प्रतिबिम्ब भाव ही अभिव्यक्ति कवि के
द्वारा की जाती है । वह अपनी अवस्था के अनुप ही प्रकृति का
चित्रण करते हैं । वह हर्ष और विषाद को प्रकृति के मध्य देखते
हैं । मानव प्रकृति के समान मानवैतर प्रकृति को अपने सुख दुख में
डुबाना मानव और प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध का परिचायक है ।
यशोदा के आँसु और रजनी की अनुधार दोनों का एक ही रूप
दिखाया गया है :-

विकलता उनकी अक्लोक के ।
रजनि भी करती अनुताप थी ।
निवट नीरव ही भिस ओस के
नयन से गिरता बहु वारि था ॥ -2

1- डापर , पृ० १८६

2- प्रियाप्रसाद, पृ० १५

मानव प्रकृति के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध की स्थापना करता है। राधा अपने वियोग में प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित कर उसके अवयवों से पृथक् रूप से निवेदन करती है। वह चमेली, घम्या, कुन्द, सूर्यमुखी जादि सबके पास जाकर अपना दुःखरोदन करती है। कालिन्दी उनकी मनोव्यथा में इतनी समा जाती है कि सखी का रूप धारण कर लेती है। प्रकृति के कण कण में सहानुभूति की भावना है। पवन राधा की बल्ल है। पवन से राधा की उक्ति अति ही मार्मिक है :-

धीरे धीरे लाना बल करके नीप का पुष्प कोई
लौ प्यारे के घल दृग के सामने डाल देना ।
यों देना तू प्रकट दिखला नित्य आशयिता हो,
कैसी होती फिरह का मैं नित्य रोमायिता हूँ ।¹

प्रकृति का मानवीकरण दिया गया है। भावों का वर्णन करने के लिए प्रकृति से सहायता ली गई है। और वृन्दावन की शोभा देख कर कहते हैं। यथा -

श्याम समाया कालिन्दी में,
या उसमें कालिन्दी ।
बेला ने जिसके माथे पर,
दी सिन्दूर को बिन्दी ॥ -2

5

प्रकृति का आलंकारिक चित्रण कृष्ण काव्य में किया गया है कवि अपने भाव को वर्णन करने के लिए जब समान कुंता है तो

1- गुणगुणसि, पृ. 67

2- वही, पृ. 49

उसके साथ ही प्रकृति का वर्णन हो जाता है। रूपक, उल्लेख, अतिशयोक्ति अलंकारों का इस प्रणाली में समावेश होता है।
उपमा अलंकार का एक उदाहरण :-

ज्युभ शोभित गोरज बाघ से
निकलते ब्रज वल्लभ यों लसे ।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा,
विलसता नभ में नलिनसि है ॥ ⁻¹

कला - निमित्त प्रकृति चित्रण भी कृष्ण काव्य में किया गया है। अनेक स्थलों पर कवि का मन प्रकृति में इस प्रकार रम जाता है कि कोई विशेष उद्देश्य न होने पर भी वह उसका चित्रण करते हैं। प्रियप्रवास में कवि प्रकृति के शान्त और उदार रूप पर मुग्ध है। हरिऔष जी ने प्रकृति के भावात्मिक के साथ गोपियों के हृदय की सुकोमल वृत्तियों की शान्तिपूर्ण अभिव्यक्ति की है। प्रकृति में श्रीकृष्ण के अंग प्रत्यंग की शोभा पाकर राधा के मन में आनन्द उमड़ पड़ता है :-

तेरा होना विकल सुभगे बुद्धिमत्ता नहीं है ।
क्या प्यारे की बदन छवि तू हनु में है न पाती।⁻²

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रकृति चित्रण, श्रुति वर्णन के द्वारा भी किया गया है। सभी श्रुति अपनी पृथक् सत्ता से काव्य को प्रभावित करती हैं। श्रुति मानसिक प्रतिकूलता और अनुकूलता के कारण पीड़ादायक और सुखदायक हैं। श्रुति वर्णन में कवियों ने भाव चित्रात्मक प्रणाली का सुन्दर प्रयोग किया है।

1- प्रियप्रवास पृ० ५०

2- प्रिय प्रवास पृ० ६२

इस प्रकार प्रकृति के आन्तर और बाह्य दोनों रूपों को देखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। आन्तरिक वेदना के चित्रण में कवि को जितनी सफलता मिली है, उतनी ही बाह्य चित्रण में भी। प्रकृति वर्णन में मानवीकरण तथा अलंकृत वर्णन ही अधिक प्रभावित करते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य का अपना स्वतन्त्र मूल्य होता है। क्योंकि प्रकृति इन्द्रिय बोध को सूक्ष्म और सजल बना देती है।

आधुनिक काव्य शैली में विभिन्न मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को पर्याप्त स्थान मिला है, व्यक्ति की आशा-निराशा, भ्रमनाशा एवं अन्य भावात्मक प्रवृत्तियों को स्थान देकर नये कवियों ने शैली को एक नयी दिशा प्रदान कर काव्य का विकास किया है। वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का कवि की काव्य-शैली एवं व्यक्तित्व पर अग्रणी प्रभाव पड़ा है। इसके परिणाम-स्वरूप काव्य शैली जेद रूपों में विकसित हुई है। मनोविज्ञान की दृष्टि से आधुनिक काव्य शैली पर पन्द्रह, युग एवं पछतर आदि मनोवैज्ञानिकों के विचारों से एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। इसी प्रभाव के कारण कवियों ने धेतना - प्रवाह, मुक्त - आसंग, अनुकम्पित भावना प्रवाह, प्रसंग गर्भस्थ एवं सूक्ष्म व्यंग को सर्वाधिक अपनाया है। उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक शैलियों का आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्य में स्थान इस प्रकार है :-

धेतना प्रवाह :

काव्य - छंद में कवि के मन के तीनों स्तरों अर्थात् धेतन, अवधेतन एवं अधेतन तीनों का प्रभावशाली सहयोग होता है। अवधेतन एवं अधेतन दोनों ही धेतना के भाग हैं, परन्तु इनकी संवेदनाओं को

बिना सम्मोहन के चेतन स्तर पर लाना कठिन है। यह कार्य स्वप्न प्रक्रिया द्वारा भी अविरल रूप से होता है। ये तीनों स्तर जड़वत और जगने में पूर्ण नहीं हैं। ये चेतना के एक विस्तृत सतह पर वितरित रहते हैं। यह चेतना का ऐसा वितरण है जिसे सांख्यिकी के लिए दो प्रतीय चिन्ता में समझा जा सकता है। एक श्रवण तो है चेतना - जैसे जैसे चेतन धीरे से छिपाए बाहर निकलती है वैसे वैसे उसमें चेतना का आँकड़ा कम होता जाता है। एकऐसी सीमा भी आती है जब चेतन का कार्यान्वित प्रभाव नगण्य हो उठता है और सब मानसिक क्रिया कलाप स्व संचालित हो उठते हैं। यह क्षण चेतन की सीमा में पहुँचने पर होने लगती है। चेतना के इस अविरल प्रवाह के कारण कवि हर समय बोलते हुए भी काव्य रचना कर सकता है। उसके मस्तिष्क में भूत, वर्तमान और भविष्य के अनेक चित्र प्रवाहमान रहते हैं। ये चित्र निकटवर्ती आलम्बनों से उद्दीप्त होकर काव्य शैली को एक नया स्वरूप प्रदान करते हैं। कुछ वस्तुओं के देखने या स्पर्श करने अथवा कुछ ध्वनियों के सुनने मात्र से यदि विगत स्मृतियाँ काव्य में अविरल प्रवाह के रूप में बिखर जाये तो चेतना - प्रवाह शैली का प्रादुर्भाव होता है।

मुक्त आसंग :

जब यौन - इच्छाएँ दमन के कारण कुण्ठित हो जाती हैं, तो वे अचेतन मन में सुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं। व्यवक्त को इन इच्छाओं का चेतन स्तर पर ज्ञान तक नहीं होता। परिणामस्वरूप व्यवक्त को हिस्टीरिया आदि रोगों का सामना करना पड़ता

है। प्रत्यक्ष ने हिस्टीरिया के लिए मुक्त आसंग की कल्पना की थी। इस पद्धति के अनुसार रोगी, चिकित्सक के सामने एक विशेष प्रभाव के कारण अपनी तन्द्रावस्था में सभी विचारों तथा भावों को बिना किसी तारतम्य एवं संगति के कहता जाता है। चिकित्सक उन्हीं भावों एवं विचारों के आधार पर रोगी की दमित इच्छाओं को समझ लेता है। यह प्रवृत्ति काव्य में भी पायी जाती है। जिन रचनाओं में यह शैली अपनायी जाती है वे अत्यन्त दुर्लभ होती हैं क्योंकि कवि की मानसिक ग्रन्थियाँ पाठक के लिए एक नयी बात होती हैं। इन कविताओं को पढ़कर यही प्रतीत होता है कि कोई सोता हुआ व्यक्ति बड़बड़ा रहा है।

मुक्त आसंग - शैली का प्रारंभ उस अवस्था में होता है। जब कवि ने स्वप्न-स्वप्न एवं चेतन की स्वप्न-प्रक्रिया में एक तारतम्य स्थापित हो जाता है। कवि द्वारा अपने स्वप्नों को एक तथ्य में कविता में प्रस्तुत कर देना ही मुक्त-आसंग शैली है। वास्तव में स्वप्न प्रक्रिया को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए एकमात्र यही शैली अपनायी जा सकती है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है।

अनुक्रमिक भावना प्रवाह :

जब चेतन मन में अस्मद्ध भावनाएँ एक क्रम के रूप में प्रवाहित होने लगती हैं तो उस स्थिति को अनुक्रमिक भावना प्रवाह कहा जाता है। कवि अपनी भावनाओं को पाठक तक पहुँचाने के लिए बीच-बीच में अनेक खाली स्थान छोड़ देता है या विचारों को अस्मद्ध रूप से चित्रित करता है। इस प्रकार की रचनाओं में पाठक को कवि की भावनाओं को समझने में अत्यन्त कठिनाई होती है। ॥

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में इस शैली को विशेष रूप से अपनाया गया है ।

प्रसंग गर्भत्व :

प्रसंग गर्भत्व की शैली का प्रयोग शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरणे के लिए किया जाता है । इस प्रकार की रचनाओं में पौराणिक कथाओं व प्रसंगों का समन्वय दिया जाता है । इस प्रकार की काव्य शैली में अत्यन्त दुर्लभता या काल्पनिकता है क्योंकि सामान्य पाठक उन कथाओं एवं प्रसंगों से अवगत नहीं होता । आधुनिक हिन्दी कवियों ने इस शैली का अधिक प्रयोग किया है । अक्सर शैली में घमटकार के दर्शन होते हैं ।

सूक्ष्म व्यंग्य :



आधुनिक कवियों ने सूक्ष्म व्यंग्य शैली का प्रयोग सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक कुरीतियों के विरुद्ध किया है । यह प्रवृत्ति कवियों के विद्रोही व्यक्तित्व की परिवाक्य है । हमारा समाज भय, भ्रष्ट और बीमारियों के कारण टिमटिमाती लालटेन के समान है । आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में सूक्ष्म व्यंग्य शैली का भी प्रयोग किया गया है । गोपियों उद्धव से कहती हैं

आर हो पठार वा छतीस छलिया के शत्रु, नीस बिसेँ अछी बीर बानन कलौचर
कहै रतनाकर पुपंच न पसारो जाटे, जाटै पै रहोमै राटे बाइस ही जौव ॥ १

बिम्ब विधान =====

बिम्ब शब्द का अर्थ :

हिन्दी साहित्य में बिम्ब सम्बन्धी मान्यताएँ पाश्चात्य साहित्य की देन हैं। संस्कृताचार्यों ने बिम्ब की ऊँकार के साथ विवेचित किया है। किन्तु पश्चिम में बिम्बों के आधार पर बिम्बवाद की आधारणा की गयी। इसका प्रभाव विश्व-साहित्य पर अत्यधिक पड़ा। आज के काव्य साहित्य का मूल्यांकन बिम्ब सम्बन्धी पाश्चात्य मान्यताओं के बिना अधूरा ही रह जाता है।

हिन्दी साहित्य में बिम्ब शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "इमेज"  **IMAGE**  शब्द के समानार्थक शब्द के रूप में किया जाता है। बिम्ब किसी बाह्य वस्तु की मानसी उपज है, उत्तका चाक्षुष्य होना अनिवार्य नहीं है। यह व्यक्ति की कल्पना, स्मृति एवं चेतन में उपस्थित होता है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने अपनी अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। डा० नगेन्द्र के अनुसार काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। -1

अन्य विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :-

॥1॥ बिम्ब सरलतम रूप में शैली के माध्यम से निर्मित एक चित्र है। -2

॥2॥ बिम्ब शब्दों के माध्यम से निर्मित एक चित्र है, जो ऐन्द्रिक गुणों से सम्पूक्त होता है। -3

1- डा० नगेन्द्र - काव्य-बिम्ब, पृ० 4

2- बी० एन० झा, मॉडर्न एजुकेशनल साइक्लाजी, पृ० 320-322

3- सी० डी० लेक्स, पौडटिक इमेज, पृ० 181

- ॥3॥ बिम्ब एक शब्द चित्र है, जो भाव या सविग से अनुप्राणित होता है । -1
- ॥4॥ ऐन्द्रियानुकूल भाव जाग्रत करने वाला एक शब्द है । -2
- ॥5॥ बिम्ब का जाग्रिक अवयव है जो अकार या साज-सज्जा से नितान्त भिन्न होता है । -3
- ॥6॥ बिम्ब का तात्पर्य चित्रात्मक अभिव्यक्ति नहीं वरन इसका सम्बन्ध विचारों के एकीकरण तथा सम्मानुकूल मानसिक एवं भावात्मक मिश्रण से है । -4

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बिम्ब मानस पर एक चित्रात्मक अनुभूति है जो ऐन्द्रिय गुणों एवं भाव से अनुप्राणित होता है । परन्तु एक कलात्मक दृश्य चित्र बिम्ब नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह कलाकार के मस्तिष्क का रेखाओं द्वारा निर्मित होता है । साहित्य सृष्टि शब्दों के माध्यम से बिम्बांकन करता है । जो पाठक के चेतन मन में अचेतन स्तर पर सोयी हुई संविदानाओं को मूर्तित करता है । बिम्ब का सम्बन्ध इन्द्रिय जन्म होता है । दूसरी ओर चित्र एक समवेत अंकन मात्र ही रह जाता है ।

बिम्ब : मनोवैज्ञानिक व्याख्या

बिम्ब एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है । इसका सम्बन्ध मन के अचेतन स्तर से होता है । शेषव से लेकर मृत्यु तक मनुष्य बाह्य

1- इटिक सी० जी० लैविग, पोलिटिकल इमेज, पृ० १८९

2- रॉबिन स्कैलटन : द पोलिटिक पैटर्न, पृ० १०

3- टी० आर० डेउजर, ऐलीमेन्ट्स ऑफ पोयट्री, पृ० 121

4- एजरा पाउंड, पैरामेस एण्ड रिब्लिस, न्यू यार्क 1918

जगत की अनेक वस्तुओं से प्रभावित होता है। यह प्रक्रिया पहले चेतन मन पर उपस्थित होती है, परन्तु कालान्तर में चेतन मन के मूर्त रूप अवचेतन स्तर में पहुँच कर मनुष्य के लिए अज्ञात हो जाते हैं। वे मूर्त रूप ध्यानपूर्वक सोचने पर पुनः चेतन मन पर उपस्थित हो जाते हैं। -¹ यह प्रक्रिया एक चैन के समान स्वयमेव चलती रहती है। पूर्ण अनुभूतियों से नीति के मूर्त रूप या मनन प्रतिमाएँ ही चिन्मय कला ज्ञाता हैं तथा अपनी दे-धारण-धारणों की स्थायक की अनेक शक्तियाँ मुख्यतः स्मृति और कल्पना ज्ञाना कार्य सम्पादित करती है। -² बिम्ब का सम्बन्ध मनुष्य के मनोव्यापार से अधिक संबंध होता है। चिन्तन के साथ साथ बिम्बों की संख्या में परिवर्तन होता रहता है। ज्यों ज्यों चिन्तन बाह्य जगत की ओर बढ़ता जाता है बिम्बों की संख्या घटती जाती है। इसके विपरीत अन्तर्गती चिन्तन बिम्बों की संख्या में वृद्धि करने में सहायक होता है। -³

बिम्ब - रचना यकायक नहीं होती बल्कि श्रेष्ठ से ही यह कार्य अवचेतन स्तर पर चलता रहता है। इस अवस्था में इनका कार्य अस्पष्ट एवं धुँसला होता है। जब बालक बाह्य जगत के सम्पर्क में आता है, तो उसके बाल्यकालीन अनुभव परिपक्व हो जाते हैं। आयु के इसी मोड़ पर बिम्ब चेतन स्तर पर उभरते हैं। बाल्यकालीन अनुभव इस बिम्ब रचना में संशोधन परिवर्तन करता रहता है। -⁴ बिम्ब रचना की इसी प्रकृति के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से

1- बी०एन० झा, मॉडर्न एजुकेशनल साइक्लाजी, पृ० 320-22

2- बिम्ब - 330-32

3- बिनाके : द साइक्लाजी ऑफ थिंकिंग, पृ० 197

4- केथेड ऑफ थिंकिंग - द इमेज, पृ० 67

भ्रष्ट माना जाता है । -1

मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि हमें 'आनेन्द्रियों' के माध्यम से बाह्य जगत् की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है, तो हमारे मस्तिष्क में ऐसे प्रभाव अंकित हो जाते हैं, जो वस्तुतः मूर्त एवं स्थूल होते हैं । बाह्य जगत् के पदार्थों की अनुपस्थिति में भी जब हम इन पदार्थों का ध्यान करते हैं तो वे पूर्ण रूपित मूर्त अथवा मानसिक अनुभव हमारे अचेतन स्तर पर उपस्थित हो जाते हैं । -2

चिन्मय शब्दों का ऐन्द्रिय चित्र है जो मानवीय भाव या रसिग से अनुप्राणित होता है तथा पाठकों से विशिष्ट काव्यात्मक भाव अथवा रसिग उत्पन्न अथवा अनुभव कराता है । -3 यह एक पदार्थ के प्रति चेतना है । -4 जिज्ञासा सम्बन्ध बाह्य तमानताओं से होता है । -5 इसकी पृष्ठभूमि में ऐन्द्रियों के धुंधले अनुभव होते हैं । -6 यह किसी वस्तु की वास्तविक प्रतिलिपि नहीं होता । बल्कि एक ऐसे चिन्तार से समन्वित होता है जो वस्तु की ऐन्द्रिय विशेषता पर ध्यान आकर्षित करने में सहायक होता है । -7

1- कैथेड्रल बोल्डिंग - द इमेज, पृ० 24-25

2- मेरी स्टुअर्ट - मार्डन साइक्लाजी एण्ड एजुकेशन, पृ० 189

3- सी०डी०लेक्स - द पोइटिक इमेज, पृ० 22

4- जीन पॉल सार्त्रे, द साइक्लाजी ऑफ इमेजिनेशन, पृ० 14

5- मेरी स्टुअर्ट- मार्डन साइक्लाजी एण्ड एजुकेशन, पृ० 195

6- विलियम मेकडगल, एन वाउट लाइन ऑफ साइक्लाजी, पृ० 249

7- जे०ई० डाउने, क्रियेटिव इमेजिनेशन, पृ० 12

इस प्रकार बिम्ब और मनोविज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। व्यवित के चेतन और अचेतन की अनुभूतियों के बिना एक बिम्ब की रचना ही हो सकती। यही कारण है कि मनुष्य अन्य प्राणियों से भेद प्राणी माना गया है।

बिम्बों का वर्गीकरण :

बिम्बों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है, परन्तु ऐन्द्रिक आधार वैज्ञानिक आधार है, क्योंकि बिम्ब एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त बिम्ब के वर्गीकरण में विषय वस्तु एवं प्रभाव दो भी एक आधार माना जा सकता है। बिम्बों की प्रभावोत्पादकता के आधार पर मुख्य रूप से दो भेद किये जा सकते हैं :- सजीव बिम्ब और उच्छिन्न बिम्ब।¹ सजीव बिम्ब भावात्मकता के कारण आनन्दानुभूति अथवा रस संवार में सहायक होते हैं,। इसके विपरीत प्रभावहीन बिम्ब उच्छिन्न बिम्बों की कोटि में आते हैं। अनिश्चित आधार पर भी बिम्बों का वर्गीकरण किया गया है जैसे - सरल बिम्ब, तात्कालिक बिम्ब, विश्रुतलित बिम्ब, प्रतिमा शून्य बिम्ब, संयुक्त बिम्ब, मिश्रित बिम्ब, संयुक्त प्रतिमा शून्य बिम्ब, प्रतिमा शून्य संयुक्त एवं मिश्रित बिम्ब, रूपात्मक बिम्ब और लाक्षणिक बिम्ब।² यह वर्गीकरण वैज्ञानिक है। प्रतिमा शून्य अथवा संयुक्त प्रतिमा शून्य बिम्ब, बिम्ब विधान में प्रतिकूल है। यदि किसी कविता को पढ़ने पर पाठक के मानस पर कोई प्रतिमा ही

1- डा० नगेन्द्र - काव्य बिम्ब, पृ० 10 से 15

2- वही, पृ० 26

न बने तो वह कविता प्रतिमा शून्य होगी । एक बिम्ब शून्य कविता को कविता कहना साहित्य के प्रति न्याय नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार विभूज बिम्ब भी किसी उत्तम कविता में पाया जा सकता है ।

ऐन्द्रिक आधार पर दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, घ्रातव्य और वास्त्विक बिम्बों की रचना होती है । स्मृति कल्पित लक्षित एवं उपलक्षित बिम्ब सर्वत्र कल्पना से उद्भूत होते हैं । इसी प्रकार प्रेरक, काव्यार्थ प्रबन्धित, काव्य दृष्टि, बौद्धिक एवं भावात्मक आधारों पर भी बिम्बों का वर्गीकरण किया जा सकता है । -

मनोवैज्ञानिक आधार पर बिम्बों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :-

- 1- प्रत्यक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब ।
- 2- परोक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब ।

प्रत्यक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब पाँचों सैव्य इन्द्रियों से सम्बद्ध है । चक्षु के माध्यम से रूप बिम्ब, श्रवण द्वारा नाद बिम्ब, घ्राणोन्द्रिय द्वारा गन्ध बिम्ब, रसना द्वारा स्वाद बिम्ब और त्वचा द्वारा स्पर्श बिम्बों की रचना होती है । परोक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्बों की श्रेणी में अनुबिम्ब, प्रत्यक्ष बिम्ब, स्मृति बिम्ब, कल्पना बिम्ब, मिथ्या प्रत्यक्ष, तन्द्रा बिम्ब आदि उल्लेखनीय है ।²

1- डा० नगेन्द्र - काव्य बिम्ब, पृ० 26

2- वही, पृ० 27

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में मनोवैज्ञानिक बिम्ब योजना

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य के कवियों ने मनोवैज्ञानिक बिम्ब - योजना को अधिक प्रश्रय दिया है। इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य रूप, बिम्ब, शब्द बिम्ब, स्वाद बिम्ब एवं स्पर्श बिम्बों को पाया जाता है। इसके अतिरिक्त पेटन और अवपेटन मन से सम्बद्ध स्वप्न तन्द्रा मिथ्या प्रत्यक्ष एवं वाद्य बिम्बों का नियोजन दर्शनीय है।

रूप बिम्ब :

रूप बिम्ब मनोविज्ञान की दृष्टि से वाक्ष्य बिम्ब है। कवियों ने पुरुष, नारी एवं प्रकृति के रूप को बिम्बायित किया है। रूप बिम्ब दृष्टव्य है -

भङ्गुली भीन जरी पर लछगी, स्थामल गात्र सुहात भाले
चात निशाली चारन लौमल पंक्तज लौ पात भाले ।^१

नाद बिम्ब :

रूप - बिम्बों के साथ साथ नाद - बिम्बों की योजना आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य के कवियों ने अत्यधिक अपनायी है। श्रवणेंद्रियों के अन्तर्गत शब्दों को मनोविज्ञान की दृष्टि से नाद - बिम्ब कहा जाता है। कवि अपनी शब्द योजना द्वारा इस प्रकार का बिम्ब उपस्थित करता है जिससे पाठक को श्रवणेंद्रियों पर प्रभाव पड़ता है। ऐसी बिम्ब योजना में शब्दों को नाद सौन्दर्य की दृष्टि से रखा जाता है। ये बिम्ब एक ध्वनि की सृष्टि

करते हैं ।

तारा बतलावे, वह वशीधर लैसा आया हममें
ताल न आया होना ऐसा, चामी किसी के सम में ।¹

गन्ध बिम्ब :

प्रकृति के माध्यम से गन्ध सम्बन्धी बिम्बों की सृष्टि
आधुनिक कवियों ने की है :-

नया रंग आया समीर में नया गन्ध गुला आया ।²

स्वाद बिम्ब :

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में रस सम्बन्धी अर्थात् स्वाद-
बिम्बों को भी सफलता पूर्वक अंकित किया गया है ।

लाल मलौने अरु है अति सनेह सो जागी
तन लचार् देत दुरव, मरन ली मुँह लगी ।³

स्पर्श - बिम्ब :

स्पर्श बिम्बों का आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में प्रयोग
किया गया है ।

1- आपर, पृ० १८६

2- आपर, पृ० १८६

3- ब्रज माधुरी सार पृ० २६०

उस जलती गहरी ली, जिससे उड़ि उड़ि मंदिरा टपके ।¹

तन्द्रा - बिम्ब :

यदि स्वप्न बिम्बों की सृष्टि निद्रित अवस्था में होती है तो तन्द्रा बिम्ब अर्द्ध-निद्रित अवस्था में उद्भूत होते हैं ।

डूबी ली वह बीच बीच में पलक खोल कर आधी
चिल्ला उठती है बिजली ली, बोलि राधिका राधी ।²

मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्ब :

मिथ्या प्रत्यक्ष बिम्बों का अचेतन मन से और भी गहरा सम्बन्ध होता है । ये रुग्ण चेतना की सृष्टि होते हैं । रोगी या व्यक्ति ऐसी वस्तु को प्रत्यक्ष देखने लगता है जो सामने नहीं होती । इसी प्रकार ऐसे शब्द, गन्ध स्पर्श अथवा स्वाद का अनुभव करता है जिनका कोई जाकार नहीं होता ।

यह क्या यह क्या मुझे था बिम्ब, दर्शन नहीं आधूरी
एक मूर्ति आधी में राधा आधी में हरि पूरे ।³

आस - बिम्ब :

आस-बिम्ब का सम्बन्ध अचेतन मनोविज्ञान से होता है । यह सामूहिक अचेतन की समग्रता पर आधारित है । ये अत्यधिक एवं सभी व्यक्तियों में समान रूप से पाये जाते हैं । इनका पुराणों

1 - आपर, पृष्ठ १६९

2 - आपर, पृष्ठ १६६

3 - आपर, पृष्ठ २०२

आदि से अधिक सम्बन्ध माना जाता है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में इस प्रकार के बिम्बों को भी यथास्थान प्रयुक्त किया गया है।

हरी नै भीजाता हुँकार किया, अपना स्वरूप विस्तार किया।

यह देव गान मुझ में लय है, यह देव पवन मुझ में लय है
मुझ में विलीन मंत्रार सत्फल, मुझमें लय है मंत्रार सफल ।

स्मृति - बिम्ब :

स्मृति बिम्ब पूर्वानुभूति पर आधारित होता है। कल्पना बिम्ब और स्मृति बिम्ब में बड़ी भेद होता है जो स्मृति और कल्पना में होता है। स्मृति में "मीठी मीठी सुखियाँ" व्यक्ति के मानस की बैवनी को दूर करने में सहायक होती हैं। इनकी छाप मन पर स्वस्तिक्क ली रेखाएँ खींच देती है।

दादा बतलावे, वह वंशीधर जैसा आया हममें

जीवा में जैसा था अण्डमौल में मधु मद था

आ मद में भी छोर परम पद आया वह मदमाद था ।²

काल्पनिक बिम्ब :

काल्पनिक बिम्ब द्वारा कवि भावी जगत के स्वरूप का बिम्बांकन करता है।

1 रश्मिणी, पृ० १८

2 आपर, पृ० १८६

सम्पुष्टि होकर भी अलि की धार न सको अलिनी सी
 अपना शून्य वृत्त पर उस कर मोड़ गई अलिनी सी ।
 चन्द्रोदय की बार जोहरी तिमिर तार माला सी
 रक्त रक्त वज्र वज्र बँधी जागिर को अलिनी सी ।¹

स्वप्न - बिम्ब :

स्वप्न बिम्ब अवचेतन मन की सृष्टि है । आधुनिक कवियों ने स्वप्नों को यथार्थ रूप में चित्रण करने में पटुता का दिग्दर्शन दिया है

अति मुग्ध होकर पार्थ ने तब मुँद ओरों की लिया
 पर खोलने पर फिर न वैसा दृश्य दिखलाई दिया।

× × × ×
 थी जिस समय उस दृश्य से मुग्ध बुद्ध न अर्जुन को रही
 राजा युधिष्ठिर आदि ने भी . स्वप्न में देखा वही

1 क्षीर पृ० १७२

2 जयप्रियवधा पृ० ४६, ५०

प्रतीक - योजना =====

प्रतीक शब्द का अर्थ : मनोवैज्ञानिक व्याख्या

प्रतीक और साहित्य का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है । विश्व-साहित्य में सबसे पहली कविता भी प्रतीक रहित नहीं थी । परन्तु प्रतीक - सिद्धान्त का विकास बाद में हुआ । इस सिद्धान्त की स्थापना कुछ फ्रेन्च कलाकारों - बोदलेयर, मलांगे, पालक्लेरी आदि ने उन्नीसवीं शताब्दी में की । इसका प्रभाव विश्व - साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ा । ⁻¹ प्रतीक शब्द का तात्पर्य उरा प्रत्यक्ष वस्तु से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी दूसरी वस्तु का बोध अथवा आभास करता है । ⁻²

हिन्दी शब्द कोश के अनुसार प्रतीक शब्द का अर्थ चिन्ह, आकृति, किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई वस्तु ⁻³ से लिया गया है । इसके द्वारा किसी परस्परगत अथवा प्रचलित अर्थ की व्यञ्जना होती है । ⁻⁴ सौन्दर्यशास्त्र में प्रतीक वह वस्तु है जो किसी तात्कालिक अभिप्राय से भिन्न किसी अन्य अभिप्राय को सुझाता है । ⁻⁵ प्रतीक सृज्य का प्रतिनिधि होता है । ⁻⁶ प्रतीकों को हम अनुभव तथा अनुभूति की अवस्था विशेष किए शब्दिक

-----5-----

- 1- शिल्पे - डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स , पृ० 409
- 2- इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका , पृ० 700
- 3- ग्रामाणिक हिन्दी शब्द कोश - रामचन्द्र वर्मा , पृ० 836
- 4- वेम्बर्ग द्वाविंतीय सेन्चरी डिक्शनरी, पृ० 1117
- 5- शिल्पे - डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स , पृ० 405
- 6- डब्ल्यू एम अरका- मैग्रेज एण्ड रियलीटि, पृ० 466

प्रतिरूप कह सकते हैं।⁻¹ कुछ विद्वानों ने प्रतीक को चिन्ह और चिन्ह को ही प्रतीक माना है। इस वर्ग के विद्वानों के अनुसार भाषा का प्रत्येक शब्द प्रतीक होता है।⁻² परन्तु प्रतीक और चिन्ह में अत्यन्त भेद है। यदि चिन्ह सामान्य अर्थ रक्षित है तो प्रतीक विशिष्ट - अर्थ रक्षित होता है। सामान्य अर्थ में व्यंजना नहीं होती है, वस्तुतः विशिष्ट अर्थ व्यंजना पूर्ण होता है। इसी प्रकार बिम्ब और प्रतीक में भी अर्थ वैभिन्न्य होता है। बिम्ब बहुमुखी होता है, परन्तु प्रतीक एकोन्मुखी जिसका अभिप्राय विशिष्ट अर्थ की ओर रक्षित करना है। इसके विपरीत बिम्ब में अनेकार्थ की सम्भावना रहती है।

बिम्ब - विधान के समान प्रतीक - विधान भी एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध ही अवचेतन मन से है फ्राइड के सिद्धान्तों का मुख्य विषय दमित इच्छाएँ हैं। उन्होंने मानव मन को चेतन - अवचेतन और अवचेतन में विभाजित कर मनुष्य की समस्त क्रियाओं का अध्ययन किया है। चेतन का स्वामी विवेक है और अवचेतन का मूल - प्रवृत्तियाँ। यदि हमारे मन में कोई ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है जिसका समाज निषेध करता है तो वह दमित होकर अवचेतन में पुनः पड़ जाती है जिसका ज्ञान मनुष्य को नहीं रहता। कालान्तर में वही दमित इच्छा हमारे चेतन, स्वप्न, कला - सृष्टियों, गलतियों तथा अन्त में स्नायविक रोगों के रूप में प्रकट होती है। ये दमित इच्छाएँ प्रायः यौन - इच्छाएँ होती हैं।⁻³ स्वप्न प्रक्रिया का मूल ये दमित इच्छाएँ हैं जो

1- डा० राम अवध द्विवेदी - काव्य के प्रतीक विधान, जालोचना 1937

2- आर्थर ए० रिचर्ड्स - द मीनिंग आव मीनिंग, पृ० 89

3- रणजीत, फ्राइड का मनोदर्श - माध्यम, सितम्बर 1964 [5]

प्रतीकात्मक अथवा छद्मदर्श में अभिव्यक्त होती हैं ।

फ्राइड ने स्वप्नों की काममूलक व्याख्या प्रस्तुत की है । उन्होंने सपाट दीवारों वाले मकान को पुरुष तथा छज्जे एवं जालियों वाले मकान को स्त्री का प्रतीक माना है । पानी से निकलना या गिरना जन्म का प्रतीक है । स्वप्न में कपड़े देना नग्नता का प्रतीक है ।

प्रतीकों का वर्गीकरण :

प्रतीकों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है । रामचन्द्र शर्मा¹ तथा सुधाशु² ने विचार अथवा भाव की प्रधानता और गोणता के आधार पर प्रतीक के दो भेद किये हैं :-

- 1- भावोत्पादक और
- 2- विचारोत्पादक

औरंगी के विद्वान ई दस का विभाजन भी इसी प्रकार का है । श्री अज्ञान³ महोदय ने स्यात्मक दृष्टि से प्रतीकों के तीन भेद किये हैं :-

- 1- सकितात्मक
- 2- व्यंगात्मक
- 3- आरोप मूलक

1- पृ० रामचन्द्र शर्मा, चिन्तामणि भाग - दो, पृ० 119

2- पृ० लक्ष्मी नारायण मिश्र - सुधाशु काव्य में अभिव्यक्तिवाद, पृ० 127

3- डॉ० एम० अरवि, मैसूर एण्ड रियलिटी, पृ० 407

संकेतात्मक प्रतीकों में प्रतीकात्मक शब्द का विशेष महत्व नहीं रहता । इसके विपरीत सम्बन्धित पदार्थ का विशेष महत्व होता है । अभिव्यंजनात्मक प्रतीकों में प्रतीकात्मक शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन से तथा आरोप मूलक प्रतीकों में एक वस्तु पर दूसरे का आरोपण किया जाता है ।

डा० नगेन्द्र के अनुसार तीन प्रकार के प्रतीक होते हैं :-¹

- 1- सृजन के प्रतीक
- 2- नाश के प्रतीक
- 3- काम के प्रतीक

पार्श्वोत्पन्न विद्वान् एच० फ्लैडर्स² ने प्रतीकों को भाव परक, व्याख्यापरक एवं अन्तर्दृष्टिपरक आदि तीन भागों में बाँटा है । भावकोटि के अन्तर्गत काव्य और विज्ञान के अनेक प्रकार के प्रतीक आते हैं । व्याख्यापरक प्रतीक में प्रतीक एवं प्रतीकेय में कुछ न कुछ सम्बन्ध स्थापित होता है जैसे - शेर, शौर्य का प्रतीक । अन्तर्दृष्टि परक प्रतीकों में भी आवागमन होता है इनमें आध्यात्मिकता एवं आदर्श की भाँकी मिलती है ।

डा० नगेन्द्र द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण व्यापक आधार पर स्थित है । इसके अन्तर्गत मानव की खाने-पीने, उठने-बैठने, मुँह एवं छूना आदि को भी स्थान दिया गया है । श्री अज्ञान महोदय का वर्गीकरण मनोविज्ञान के निकट नहीं है । इस संदर्भ में

1- डा० नगेन्द्र - देव और उनकी कविता - पृ० 203

2- डब्ल्यू०एम० अरबन-क्यूटेड इल्लेगैण्ड एण्ड रियलिटी - पृ० 506

रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया वर्गीकरण अधिक समीचीन है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक प्रतीक योजना :

भारतीय - साहित्य में प्रतीकों की परम्परा "ऋग्वेद" से ही की जा रही है । वेदिक रूप ने " न चूमे वाले जल " की उपमा जल के जल से दी थी, जल की लपटों को "सींग धुमाते हुए पशु से ज़ोर हास करने वाली उषा को व्याधस्त्री से ।⁻¹ यही धारा आधुनिक युग तक अविच्छिन्न रूप में पायी जाती है । यदि सबसे कम प्रतीक कहीं मिलते हैं तो वह है रीतिकालीन युग । यह परम्परा संस्कृत के अमर्षी द्वारा लोक - कथाओं में सबसे अधिक प्राप्त होती है ।⁻² मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है । मनुष्य प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है । अमूर्त चिन्तन अधिक विकसित स्तर का लक्षण है । कुछ प्रतीक सार्वभौम होते हैं जैसे - शक्ति की रता का, श्वेत रंग पवित्रता का, शृगल कायरता का और लोमड़ी घतुराई का प्रतीक है ।⁻³

भावोत्पादक प्रतीक :

प्राचीन काल में प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक स्तर की अनुभूतियों को अभिव्यक्त के लिए हुआ था । परन्तु

1- मदन वात्स्यायन , तीसरा सप्तक, पृ० 125

2- ओय - आत्मने पद , पृ० 41

3- साहित्य कोश - डॉ० धीरेन्द्र वर्मा , पृ० 472

आज वस्तु स्थिति बदल गयी है । आधुनिक कवियों ने प्रतीकों
 क। नियोजना सामाजिक वर्णनाओं एवं कुण्ठा ग्रस्त मन की
 अनुभूतियों पर शिष्टता एवं सौन्दर्य का आवरण डालने के लिए
 की है । क्योंकि आज के मानव का मन यौन कल्पनाओं से
 लदा हुआ है और वे सब परिकल्पनाएँ दमित और कुण्ठित
 हैं । उनके उपमान यौन प्रतीकार्थ रखते हैं । -।

षष्ठ - अध्याय

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य : व्यक्तित्व विश्लेषण

॥क॥ व्यक्तित्व शब्द की व्याख्या

॥ग॥ व्यक्तित्व निर्माण में वंश परम्परा एवं वातावरण का प्रभाव

॥ग॥ आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में व्यक्तित्व का प्रतिफलन : व्यक्तित्व विघटन की समस्या

कूट - अध्याय

=====

आधुनिक हिन्दी कूट - काव्य - व्यक्तित्व विश्लेषण

व्यक्तित्व और साहित्य का अन्तर्निहित संबंध है । जिस प्रकार व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व को उससे जलग नहीं किया जा सकता , उसी रूप में व्यक्तित्व और साहित्य एक दूसरे से सम्बद्ध हैं । व्यक्तित्व ही वह नियामक तत्व है, जो साहित्य की धारा को एक विशेष मोड़ देता है । काव्य या अन्य विधाओं की भाषा, शब्द, शैली, प्रतीक एवं चिम्ब आदि सभी काव्य-तत्व व्यक्तित्व की विशेषता से ही विशिष्टता प्राप्त करते हैं । व्यक्तित्व पर देश - काल, वर्णानुक्रम तथा शारीरिक विशेषताओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । ये विशेषताएँ काव्य पर भी प्रभाव अंकित करती हैं । अतः काव्य की आलोचना तब तक अपूर्ण रहती है । जब तक कि कवि के व्यक्तित्व को पूर्ण रूपेण समझ न लिया जाये । इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में आधुनिक कूट - काव्य के कवियों के व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक धरातल पर परिलक्षित किया गया है ।

व्यक्तित्व शब्द की व्याख्या :

हिन्दी साहित्य में "व्यक्तित्व" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के " पर्सनैलिटी " शब्द के पर्याय के रूप में करते हैं । "पर्सनैलिटी"¹ शब्द का सम्बन्ध लैटिन के " पर्सोना " शब्द से है, जिसका तात्पर्य नक्की केहरे से है । इन नक्की केहरे का प्रयोग नाट्य - अभिनय के समय अभिनेताओं द्वारा किया जाता था , याहे वे नाटक का

1 - चारमस एल० मन, - साह कलाजी, पृ० 161

अभिनय करें या उलनायक का । बाद में इसका प्रयोग व्यक्तित्व -1
कार्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ, यह शब्द सामाजिक दायित्व को
भी उचित करता है । -2 मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का रक्ति उस
व्यवहार की ओर है जो श्रेष्ठ ही अच्छा या बुरा न हो, परन्तु दूसरे
लोगों को जो रुचि कर या अरुचि कर लगे तथा जो अपने साधकों के
बीच व्यक्ति की स्थिति को अनुकूल या प्रतिकूल बना दें । चरित्र
व्यक्तित्व का एक अंग है, चरित्र को व्यक्तित्व नहीं कहा जा सकता ।
चरित्र का रक्ति अधिकतर उस आचरण की ओर होता है, जिसे अच्छा
या बुरा कहा जा सके, जो समाज द्वारा स्वीकृत आदर्शों के अनुकूल
होने में सफल या असफल कहता हो । -3

व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है, जैसा कि
यह उसके विचार और अभिव्यक्तिगत की रीति, उसकी अभिवृत्ति
और रुचि, कार्य करने के ढंग और उसके व्यक्तिगत जीवन दर्शन से
प्रकट होता है । -4 मनुष्य की सदिनाएँ मूल प्रवृत्ति या उद्देश्य,
प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना, बुद्धि तथा निराले सभी मानसिक शक्तियों
का सम्बोधन व्यक्तित्व शब्द में निहित है । -5 जब मनोविज्ञान के
विभिन्न सिद्धान्त और धारणाएँ व्यवहार के एक दूसरे छान्ड की
ओर इंगित करते हैं, तो व्यक्तित्व, अपरिवर्तित रूप में, एक ओर

1- सैफिलिय ब्यारेन्स, हरीमन, इन साइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लाजी
पृ० 455

2- नारमन एल्ग मैन, साइक्लाजी, पृ० 161

3- रावर्ट एस० बुडबर्ग, डोनाल्ड जी० माकिव्स, साइक्लाजी ॥ अनुवाद -
उमापति राय वर्देवा ॥ पृ० 53

4- वही, पृ० 53

5- ए० ए०, राकेट, पर्सनालिटी, पृ० 87-88

मनुष्य की समस्त कार्य प्रणाली, दूसरी ओर व्यक्ति के उन भिन्न संगठनों, जो एक दूसरे से अलग करते हैं, प्रतिपादन करता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के मूल्यांकन में यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं, सामाजिक सम्बन्धों को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है। साथ ही परिवेश में अनुकूलन के लिए अपने दृष्टिकोण व आदत के द्वारा, विभिन्न वास्तविकताओं के साथ किस प्रकार कार्य करता है।¹ व्यक्ति की वे विशेषताएँ जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अलग करती हैं, व्यक्तित्व की प्रतिपादक हैं। इसमें मनुष्य की समस्त मानसिक शक्तियाँ एवं प्रवृत्तियों की पारस्परिक क्रिया - प्रतिक्रियाओं का समवेत रूप² मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं का विकसित रूप सम्मिलित रहता है।³

व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति वर्तमान में रहता है और अपनी सम्पत्ति तथा सामाजिक सफलता को महत्व देता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति भविष्य के स्वप्न देखेगा या योजना बनायेगा और अपने ही प्रति मानों और भावनाओं को महत्व देगा। बहिर्मुखी व्यवहारिक, सक्रियता पसन्द, सरलतापूर्वक शीघ्र निर्णय लेने वाला होता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति आत्मा की आवाज पर काम करने वाला, काल्पनिक जगत में रहने वाला होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति दृश्य, भौतिक जगत में रुचि लेने वाला होता है। जबकि अन्तर्मुखी प्रकृति के अदृश्य नियमों तथा शक्तियों

1- एन साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, ग्रंथ -17, पृ० 694

2- मैक्डगल, द एनर्जीज आव मैन, पृ० 360

3- सी०जी० गुग, द डिवलपमेंट आव पर्सनलिटी, पृ० 171

में रुचि लेता है ।

व्यक्तित्व निर्माण में वंश परम्परा एवं वातावरण का प्रभाव

व्यक्ति वैभिन्य का कारण वंश - परम्परा एवं वातावरण पर आधारित है । वंशानुक्रम और वातावरण की परस्पर क्रिया एवं व्यक्ति की प्रतिक्रिया व्यक्तित्व निर्माण की आधारशिला है । वंशानुक्रम के अनुसार व्यक्ति केवल शारीरिक विशेषताओं को ही परम्परा रूप में प्राप्त नहीं करता बल्कि उसका भावात्मक स्तर भी हरी परम्परा में विदसित होता है । इसके साथ ही यदि किसी व्यक्ति को उचित वातावरण प्राप्त होता है तो उसके व्यक्तित्व में कुछ और विदसित प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हो जाती है । शारीरिक गठन वंशानुक्रम से प्राप्त करते हैं तथा मानवीय गुण वातावरण से निर्धारित होते हैं । -1

"व्यक्तित्व" शारीरिक मनोविज्ञान और सामाजिक मनो-विज्ञान का संगम स्थल है । -2 शरीर रचना की दृष्टि से दो व्यक्ति एक समान नहीं होते । शारीरिक रचना का न्यूनाधिक सम्बन्ध व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों से होता है । गोल मटोल व्यक्ति हास्य प्रिय, आराम पसन्द और सामाजिक होते हैं, दुब्बले पतले व्यक्ति संयमी और अन्तर्मुखी होते हैं । व्यक्ति समाज की उपज है । इसलिए समाज के मानदण्ड व्यक्ति के नियामक तत्व होते हैं । इस प्रकार शारीरिक और सामाजिक, मनोविज्ञान, व्यक्तित्व-स्थापन का स्थायी तत्व माने जाते हैं ।

1- हर्वट सारेन्सन एवं मारगेरिट माम, साइक्लाजी पत्र लिजिंग, पृष्ठ 16

2- राबर्ट एस. कुडवर्थ, मार्किंस, साइक्लाजी ॥ अनु० उमापति राय

युगीन आन्दोलन - धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक

व्यक्तित्व निर्माण में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों का विशेष प्रभाव पड़ता है। ये आन्दोलन व्यक्ति के वैचारिक धरातल को नयी दिशा प्रदान कर व्यक्तित्व विकास में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए आज भारत में सती-प्रथा नहीं दिखाई देती है। इसके पीछे राजा राम मोहन राय का आन्दोलन स्मरणीय है। यही कारण है कि आज का व्यक्ति सती प्रथा में विश्वास तक नहीं रखता, कि क्या ऐसी भी कोई प्रथा हो सकती थी? यही व्यक्तित्व का विकास कहलाता है।

आधुनिक व्यक्ति का व्यक्तित्व केवल भारतीय आन्दोलनों से निर्मित नहीं बल्कि पश्चात्ता आन्दोलनों ने भी पूर्ण प्रभाव अर्पित दिया है। जहाँ से सिद्धित भारतीय का व्यक्तित्व, राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, ऐनीबीसेंट, महर्षि अरविन्द, गांधी, प्रबुद्ध और मार्क्स के विचारों से प्रभावित है। इसके साथ ही औज़ी साम्राज्य, औज़ी सभ्यता, वैज्ञानिक अनुसन्धानों का भी व्यक्तित्व निर्माण में सक्रिय हाथ रहा है।

भारतीय समाज और राजनीति में नवीन जीवन मूल्यों का सूत्रपात ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ ही हो गया था। शिक्षा, धर्म, राजनीति और संस्कृति का प्रथम मोड़ राजा राम मोहन राय के साथ जुड़ा हुआ है। वे साक्षर की ओर राजनीतिज्ञ और सामाजिक नेता अधिक थे।¹ स्वामी दयानन्द ने इस कार्य भार

1- डा० राम गोपाल सिंह बोहान, आधुनिक हिन्दी साहित्य,

को आर्य समाज की स्थापना कर आगे बढ़ाया । आर्य समाज के अनेक सदस्यों ने ब्रिटिश - सत्ता के विरोध में अपनी सहयोग दिया । स्वामी विवेकानन्द ने राधा कृष्ण - मिशन की स्थापना कर भारतीय संस्कृति को विदेशों तक पहुँचाया । वे प्रत्येक भारतीय को कर्तव्य एवं जाग्रत देखने की इच्छा करते थे । उन्होंने जिस सम्मान तथा स्वतन्त्र भारत के स्वप्न देखे थे, आज हम उन्हीं को पूरा हुआ देखते हैं ।

श्रीमती एनीबेसेंट और थियोसोफिकल सोसायटी का स्थान भारतीय समाज में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसके लिए उक्त श्रीमती अत्यन्त ही जिज्ञासु हैं जिनमें पूर्ववर्ती विचारकों की है । श्रीमती एनीबेसेंट ने गुप्त प्राय भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विकास किया तथा भारतीयों को भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिए प्रेरित किया ।

वैयक्तिक क्रांति पर गोपाल कृष्ण गोखले और गाँधी जी की विचारधारा का भी व्यक्तित्व के विकास में अत्यधिक महत्त्व है । गाँधी जी ने केवल भारत को स्वतन्त्र ही नहीं कराया परन्तु विश्व को जीसा परमोधर्म का भी सन्देश दिया । उनके विचार से अहिंसा के बल से ही एकता बंध सकती है और विश्व-अन्धकार जा सकता है, क्योंकि वही बल है जिसमें अहंकार का पोषण नहीं होता, बल्कि विसर्जन होता है । गाँधी जी की विचारधारा के कारण गाँधीवाद का प्रचलन हुआ । वास्तव में यह एक मानवता-वादी - दर्शन है, जिसमें स्वाधीनता के बाद भी हिन्दी-साहित्य को काफी प्रभावित किया है । गाँधीवाद स्वतन्त्र भारत की सामुदायिकता, उदात्तता, मजदूर-पूँजीपति संबंध आदि अनेक

समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है और वर्ग समझोता तथा हृदय परिवर्तन के रूप में वर्ग - वैषम्य हीन समाज की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिकोण को ग्रहण कर उस काल में अनेक साहित्यकारों ने वर्तमान 'विव' की समस्याओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

गांधीवाद के अतिरिक्त महर्षि जगजिन्द वाद का नाम भी भारतीय वैचारिक भूमि के परिवर्तन के लिए उल्लेखनीय है। श्री जगजिन्द ने व्यक्ति के भौतिक विकास के साथ-साथ उसके आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता के महत्व का प्रतिपादन कर, आध्यात्मिक भौतिक विकास के समन्वय में ही व्यक्ति और समाज की वास्तविक प्रगति का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया है।

भारतीय विचारकों के अतिरिक्त पाश्चात्य विचारकों का आधुनिक अस्तित्व निर्माण में अमूर्त योग है। इस संबंध में मार्क्स और एंगेल्स का नाम उल्लेखनीय है। मार्क्स ने डार्विन के विकासवाद तथा हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का अपनी विचारधारा में उपयोग किया है। उन्होंने, हीगल के विचार, विरोधी विचार और समन्वित विचार की तीन अवस्था की भूमियों को भौतिकवादी स्वरूप प्रदान कर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की अवधारणा की है। मार्क्स की विचारधारा अनुसार समस्त समाज का नियामक तत्व भौतिक विकास अर्थात् अर्थ है। उन्होंने किसी ईश्वरीय सत्ता की अवधारणा को स्वीकार न करते हुए समाज को आर्थिक पहलुओं के कारण वर्गों में विभक्त किया है। मार्क्स पूँजीवादी वर्ग के अत्यन्त विरोधी थे। हिन्दी कृष्ण - काव्य पर मार्क्सवाद की विचारधारा का प्रभाव भी है।

मार्क्स के साथ-साथ एंगेल्स का नाम भी उल्लेखनीय है।

प्रगल्भ के नाम के साथ साथ "प्रगल्भवाद" की परिकल्पना सम्बद्ध है। जिस प्रकार कार्ल मार्क्स ने भौतिक विकास को ही अपनी विवेचना का मुख्य नियामक तत्त्व स्वीकार किया, उसी प्रकार प्रगल्भ ने भी "काम" को महत्त्व दिया। प्रगल्भ इस "काम" की शक्ति को जन्मजात तथा उत्तरोत्तर विकास की श्रेणियों में विकसित होती हुई परिपक्वता में परिणित मानते हैं। इन प्रमुखवादों के अतिरिक्त अस्तित्ववाद का भी हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

स्वतन्त्रता - प्राप्ति के पश्चात् भारतीय व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में पूर्ण स्वेष्ट परिवर्तन हुए हैं। स्वतन्त्रता से पहले भारतीय व्यक्ति का लक्ष्य केवल स्वतन्त्रता प्राप्ति करना था। परन्तु इसके पीछे उसकी अनेक आशाएँ लिप्त थीं। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय समाज ने अनेक दुरीतियों का विनाश हुआ, परन्तु अनेक नयी समस्याओं ने उनका स्थान ग्रहण दिया। सबसे गम्भीर समस्या आर्थिक संकट की है। इसके कारण भारतीय सामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व विषटित हो गया है। शिक्षा का प्रसार भी समुचित रूप में हुआ। परन्तु बेरोजगारी की समस्या के कारण विकास रुक गया है। साथ ही रिश्वतखोरी, जमाखोरी आदि अनेक समस्याओं के कारण भारतीय व्यक्ति कुण्ठित तथा संक्रास की स्थिति में है।

कवि समाज का ही प्राणी है। अतः युगीन समस्याओं, दुरीतियों आदि का प्रभाव उस पर भी पड़ता है, क्योंकि कवि अत्यन्त संवेदनशील प्राणी होता है। इसलिए उसके काव्य में उन सब वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में व्यक्तित्व का प्रतिपन्नन =====

व्यक्तित्व के स्थायी तत्वों में ज्ञा परम्परा शारीरिक गठन और आतावरण मुख्य हैं। युग विशेष का व्यक्तित्व वातावरण से प्रभावित एवं विकसित होता है। व्यक्तित्व का विकास व्यक्ति के परिवेश पर निर्भर है। विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ व्यक्ति के शैशव काल से ही चेतन और अचेतन मन को प्रत्यक्ष अथवा छुप्यक्ष रूप में प्रभावित करती रहती हैं। अचेतन की स्थिति सदियों का परिणाम है। हमारे जीवन की समस्त वास्तविकताएँ सुप्तावस्था में संघटीत रहती हैं। जो उचित वातावरण प्राप्त कर चेतन को प्रभावित करती हैं। अचेतन के विश्लेषण पर चेतना की पर्तें मिलती हैं जिसका अन्तरतम बाह्य जगत् से भिन्न होता है।

आधुनिक कवि का अचेतन युगीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विषमताओं से आक्रान्त है। समाज और व्यक्ति का अन्तोन्याशित सम्बन्ध है। परन्तु व्यक्ति को समाज की मान्यताओं के अनुकूल ही जीवन निर्वाह करना पड़ता है। इन मान्यताओं का व्यक्तित्व निर्माण में अदम्य सहयोग रहता है। समाज अपनी वर्जनाओं द्वारा व्यक्ति को अनुशासित करता है। परन्तु इसका परिणाम व्यक्ति को संघर्ष के लिए प्रेरित करना होता है। वर्जना के कारण वृत्तियाँ प्रतिक्रिया स्वरूप अधिक आवेग और आवेश उत्पन्न करती हैं। समाज की वास्तविकताओं के अतिरिक्त राजनैतिक परिवेश ने आधुनिक व्यक्तित्व को और भी अधिक प्रभावित दिया है।

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन और मानवीय विकास की दृष्टि से है। विराट के स्वरूप का जितना विवाद वर्णन भारतीय मनीषियों ने दिया है, अन्यत्र नहीं है। यही कारण है कि आज भी व्यक्ति के अचेतन में शेषाव काल में ही यह बात जम जाती है कि वह विराट का ही स्वस्व है, और अण्ड है तथा वह इतिहास पुरुष है। जाड़ुनिक व्यक्तित्व बदलती हुई परिस्थितियों में पूर्ण विकास से वंचित हो गया है। ज्ञान-धर्म, काम और मोक्ष की स्थापित मर्यादाएँ और सीमाएँ समाप्त हो गयीं हैं।

परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण मानव - व्यक्तित्व सीमाबद्ध हो गया है। व्यक्ति मन में स्थिरता नहीं है, बल्कि वह छिन्न - भिन्न होकर भग्न - छण्ड हर मात्र शेष है। यही कारण है कि वह बिलसित मन मुण्डित है। मानव का अन्तर्मन जालोडित एवं प्रमत्त पूर्ण रहता है। उसका जीवन मृग मारीकिया के समान तृप्ति ही बना रहता है। वह जिन इच्छाओं की तृप्ति नश्वर संसार में नहीं कर पाता उनकी तृप्ति वह निद्रा में स्वप्नों द्वारा करता है। समस्त क्लेश उसे व्यक्ति और चिन्तित प्रतीत होता है। उससे वह अपनी मानसिक स्तब्धता को छी बैठता है। वेदना और चिन्ता का परित्याग करने पर ही उसका कल्याण सम्भव है।

आज की परिस्थितियों ने व्यक्ति के अहं को प्रेरित कर दिया है। व्यक्ति अन्निष्ठा की स्थिति में है। उसका अहं ही उसे जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। उसके लिए टूटना या बिखरना कोई महत्त्व नहीं रखता, बल्कि जीवन संघर्ष ही उसके लिए अग्रसर है। अहं, धर्म, अर्थ काम और मोक्ष में भी रहा है, चाहे नयी प्रेरणा या बल उसे मिले या न मिले।

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है। यह वर्गीकरण व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षणों पर आधारित है। अन्तर्मुखी व्यक्ति परिवेश के साथ समझौता करने में लग्न करता है। उसकी भावनाओं का तादात्म्य अन्य व्यक्तियों से नहीं हो पाता है। वह कल्पना के संसार में विचरण करता है। उसके विचार द्रुम में अतृप्त इच्छाओं का आदेग रहता है। उसकी छुपि वास्तविक जगत में न छोड़कर काल्पनिक जगत में होती है। अन्तर्मुखी व्यक्ति के लिए एकान्त अत्यधिक प्रिय होता है। अहं का सर्वथा अभाव होता है। जीवन संघर्ष से पलायन की ओर झुका होता है। उसकी आँखों में न तेज होता है और न घेरे पर हँसी होती है। उसका अचेतन कुंठा और मनोविकृतियों से परिपूर्ण रहता है। व्यक्ति इस अवस्था में पलायन को उचित मानता है, क्योंकि इच्छा जन्य अभाव की पीड़ा उसे विवश बना देती है और संसार का बन्धन उसे प्रिय नहीं लगता है।

बहिर्मुखी व्यक्ति पलायन के स्थान पर जीवन संघर्ष में प्रवृत्त होता है। उसे अपने आत्म एवं शारीरिक बल पर विश्वास होता है। इस प्रकार का व्यक्ति कुंठा ग्रस्त नहीं हो पाता क्योंकि उसे वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है और इस प्रकार अंध मुक्त होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी मर्जी का मालिक, आर्थिक संकट में खर्च करने वाला तथा प्रसन्नचित्त रहने वाला होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक कवि का व्यक्तित्व राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की विरोधता के कारण पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका है। समाज में व्याप्त असंतोष, दरिद्रता तथा अराजकता के कारण

कवि व्यक्तित्व अनास्था, विकृत, कुठित एवं विभ्रूलित विषम परिस्थितियों में उसे संवर्ध करने को प्रेरित करता है । इसलिए यह स्वीकार किया जा सकता है कि आधुनिक कवि अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी है । परन्तु अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व अपने आप में पूर्ण विरोधताओं को समाहित नहीं करते बल्कि दोनों प्रवृत्तियों एक दूसरे व्यक्तित्व में अतिक्रमण करती रहती हैं । अतः आधुनिक कवि का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व की विरोधताओं का एक पुंज है , जिसमें अन्तर्विरोधी धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं ।

सप्तम - अध्याय

॥क॥ उपसंहार

॥ख॥ मूल्यांकन

सप्तम - अध्याय

उपसंहार =====

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य में भारतेन्दु - युग द्विवेदी - युग और छायावादी युग का महत्वपूर्ण स्थान है । भारतेन्दु - युग में काव्य शास्त्रीय परम्पराओं और उनके पालन, भाषा की व्याकरण सम्मत एकरूपता, सामाजिक शिष्टता, कला के रूप और उसके उत्कर्ष की ओर ध्यान नहीं दिया गया । उस समय तो देश में ही तत्कालीन साहित्य में जन - भावना को अभिव्यक्ति मिल रही थी । इस युग के काव्य में अभिव्यक्ति निरुत्कर्षता और अर्थरहितता का मनोरम रूप मिलता है । अनुभूति को सीधी - सरल भाषा और साहित्य विधा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है । काव्य के क्षेत्र में प्राचीन परम्परा को विकास के नए पथ पर अग्रसर किया । प्रकृति भ्रमर और कृष्ण - लीला का वर्णन अपनी स्वतन्त्र अनुभूति से किया ।

द्विवेदी - युगीन कृष्ण काव्य प्रधान रूप से इतिवृत्तात्मक है । इस युग के कवियों को अतीत के गौरव का गान गाना था, राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करना था, सामाजिक सुधारों की माँग उठानी थी, भ्रष्टाचार का विरोध कर राष्ट्र के जीवन में सत्य और सच्चरित्रता की भावना उत्पन्न करनी थी । इसके लिए ऐसी भाषा और शैली की आवश्यकता थी जो सबकी

समय में आसानी से आ जाये और इन कवियों ने ऐसी भाषा और शैली को ही अपनाया । इसी कारण इस कविता में तथा कथन की प्रधानता है तथा काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने वाले उपकरणों - लाक्षणिक व्यंजना, उक्ति कठता, कल्पना की सुन्दर उड़ानें, रत्नकारों का पमत्कारित प्रयोग आदि का अभाव रहा । इस अभाव ने काव्य को सुबोध तो बना दिया परन्तु उसमें कला-सौन्दर्य, सरसता, प्रभविष्णुता आदि का अभाव उत्पन्न कर दिया तथा काव्य को नीरस बना दिया । नैतिकता के प्रति अधिक आग्रह रहने के कारण इसमें मानव - मन की कोमल भावनाओं, प्रेम आदि की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति न मिल सकी । इसका प्रधान स्वर उपदेश परक रहा ।

छायावाद हिन्दी कृष्ण - काव्य की अन्तर्मुखी धारा है । इसमें वाङ्मय जगत की ओक्षा अन्तर्जगत ॥ भाव-लोक ॥ बौद्धिकता की ओक्षा भावात्मकता, जीवन के यथार्थ की ओक्षा मनः लोक की कल्पना, यथार्थ की ओक्षा कल्पनावेष्टित सौन्दर्य, सर्वज्ञ की ओक्षा प्रेम और परम्परा की ओक्षा नूतनता के प्रति अधिक मोह रहा है । द्विवेदी युगीन काव्याभिव्यक्ति में मानव की कोमल भावनाओं, मनोरम कल्पनाओं और वैयक्तिक सुख - दुःख आत्मिक अभिव्यक्ति पर अज्ञा लगा दिया गया और वह काव्य - शिल्प की दृष्टि से परम्परा विरुद्ध सा दिखार्थ पढ़ने वाला होते हुए भी धीरे परम्परावादी था । छायावादी कृष्ण - काव्य में इसी अज्ञा और परम्पराकृतता के प्रति विद्रोह की भावना है और यह विद्रोह की भावना परिस्थिति जन्य है ।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य के कवियों ने एक ओर मानव - मन के रागात्मक मनोभावों का चित्रण किया

मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। नये कवि पर प्रकृतित्वाद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। इसके साथ ही प्रेम-मनोभाव का उदात्त चित्रण भी नये काव्य की विशेषता है। प्रेम चित्रण में कवियों ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। परन्तु आधुनिक प्रेम मनोभाव चित्रण पूर्व रीति - कालीन तथा उसके परवर्ती चित्रण - पद्धति से सर्वथा भिन्न है। नये काव्य में प्रेम - मनोभाव के चित्रण में मनोविज्ञान की स्वप्न तथा पैन्सी पद्धति को भी अपनाया गया है। प्रेम के स्वप्न-मिलन चित्रों में कवि के हृत्पुद्गि तथा स्तब्ध हो जाने के चित्र भी आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में प्राप्त होते हैं।

रागात्मक मनोभावों के उत्तिरिक्त विरागात्मक मनोभावों का चित्रण भी आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक पद्धति पर हुआ है। हास्य मनोभाव के चित्रण में कवि ने हास्य के उपभेदों को काव्य में स्थान दिया है। सम-कालीन परिवेश की वास्तविकताओं को हास्य द्वारा अभिव्यक्त किया है।

अहं तथा दैन्य मनोभावों के चित्रण में मनो - वैज्ञानिकता का परिचय दिया है। अहं के घेतन तथा अवेतन दोनों ही रूपों को आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में अभिव्यक्त मिली है तथा दैन्य की अभिव्यक्ति प्रेम चित्रों के साथ - साथ संघर्ष में पराजय के चित्रों में अभिव्यक्त हुई है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य शैली मनोवैज्ञानिक है। कवियों के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक एवं चारित्रिक पक्ष का आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य पर स्पष्ट प्रभाव जटिल

होता है। नये कवियों ने प्रेम चित्रण के लिए रहस्यात्मक शैली को स्थान न देकर मनोवैज्ञानिक प्रकृतिवादी शैली को अपनाया है। कवियों ने विभिन्न घटनाओं, मानसिक दशाओं तथा शारीरिक अवस्थाओं के सूक्ष्म तथा मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं। साथ ही मनोविक्षलेषण शैली की भी प्रधानता नये काव्य की विशेषता है। समाज में व्याप्त संघर्ष, कुंठा, घुटन तथा अक्ताद आदि के चित्र मनोवैज्ञानिक स्थितियों का यथार्थ एवं सजीव चित्रण हुआ है। अनुभूतियों को प्रेषित करने के लिए आधुनिक कवियों ने चेतना प्रवाह, मुक्त अनुषंग, अनुक्रमिक भावना प्रवाह तथा सूक्ष्म व्यंग्य शैली को सर्वाधिक स्थान दिया है। चेतना प्रवाह शैली में कवि सप के चेतन में प्रश्नों की श्रृंखला उत्पन्न हो जाती है जिनका समाधान कवि समलतापूर्वक नहीं कर पाता।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में मनोवैज्ञानिक रूप बिम्बों का चित्रण हुआ है। कवियों ने पुरुष, नारी तथा प्रकृति चित्रण में इन बिम्बों का अंकन किया है। इसी प्रकार शब्द-बिम्ब, गन्ध-बिम्ब, स्पर्श-बिम्ब, स्वाप्न-बिम्ब, तन्द्रा - बिम्ब, गीय्या, प्रत्यक्ष बिम्ब तथा आद्य - बिम्बों के चित्र भी दृष्टव्य है। प्रतीकों की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में विचारात्मक तथा भावात्मक दोनों ही प्रकार के प्रतीकों को समाविष्ट किया गया है।

आधुनिक कवि का व्यक्तित्व विस्तृत है। उसका अवचेतन युगीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विषमताओं से आक्रान्त होने के कारण पूर्णत्व की अपेक्षा रखता है। कवि आत्मग्राही तथा संघर्षशील है। यह संघर्ष बाह्य तथा अन्तर दोनों ही घरातलों पर सक्रिय है। राजनीति ने भी उसके अत्याचारों,

अनाचारों तथा बेकारी को दूर करने में सहायता नहीं की है ।
जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्त्व ज्ञान,
धर्म, प्रिया, वर्ग और मोक्ष की अवधारणाएँ उसकी बेतना को
छिन्न - भिन्न कर रही है ।

मूल्यांकन

आधुनिक कृष्ण - काव्य नवीन परिवेश की उपज
है । पूर्ववर्ती हिन्दी कृष्ण - काव्य परम्परावादी है । अतः
काव्य के जो मानदण्ड परम्परावादी कवियों के लिए उपयुक्त
थे वे सब सीमित अर्थ के द्योतक हैं । नया कृष्ण - काव्य
रस - सिद्धान्त की कसौटी से परे का काव्य है । युगीन - काव्य
के भाव एवं कला पक्ष का पूर्ण अध्ययन मनोवैज्ञानिक कसौटी पर
ही सम्भव है । मनोविज्ञान के द्वारा प्रतिष्ठापित भाव एवं
मनोभाव का अध्ययन रस - सिद्धान्त की न्यूनताओं का पूरक है ।
अतः कवि व्यक्तित्व के समुचित अध्ययन में मनोवैज्ञानिक भाव
एवं मनोभाव निरूपण युग की आवश्यकता है । अतः शैली के क्षेत्र
में नवीन मनोवैज्ञानिक शैलियों का समवेत विवेचन मनोविज्ञान की
आधार-शिक्षा पर ही सम्भव है ।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में आधुनिक हिन्दी कृष्ण -
काव्य के विषय तथा शिल्प दोनों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन दृष्टव्य
है । भाव के क्षेत्र में आधुनिक कृष्ण - काव्य रागात्मक, विरागा-
त्मक, वात्सल्य, सख्य एवं शृंगार आदि मनोभावों का काव्य है ।
शैली के क्षेत्र में प्रकृति - चित्रण, बिम्ब-विधान तथा प्रतीक - विधान

मनोविज्ञान के अत्यन्त समीप है । मनोविज्ञान के अनुसार जो बिम्ब तथा प्रतीक विधान हैं, वे आधुनिक हिन्दी कृष्ण - काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं । कवि के व्यक्तित्व के विघटन के कारण भी मनोवैज्ञानिक है । वर्तमान परिस्थितियों ने व्यक्ति मन को कुण्ठा तथा संक्रास से आपूरित कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप कवि व्यक्तित्व विशृङ्खलित तथा कुठित है । व्यक्तित्व की ये समस्त विशेषताएँ आधुनिक कृष्ण - काव्य में स्थान - स्थान पर लक्षित होती हैं ।

परिशिष्ट

सहायक पुस्तकों की सूची

- ॥क॥ हिन्दी ग्रन्थ ॥काव्य॥
- ॥ख॥ आलोचनात्मक ग्रन्थ
- ॥ग॥ मनोविज्ञान के ग्रन्थ
- ॥घ॥ लिस्ट ऑव एंग्लिश बुक्स

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी ग्रन्थ {काव्य}

1- उदय शतक	जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर
2- कनुप्रिया	कर्मवीर भारती
3- कृष्णायन	द्वारिका प्रसाद मिश्र
4- चन्द्रावली नाटिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
5- जयद्रथ वध	मैथिली शरण गुप्त
6- जय भारत	मैथिली शरण गुप्त
7- द्वापर	मैथिली शरण गुप्त
8- प्रिय प्रवास	ज्योद्ध्या सिंह उपाध्याय
9- प्रेम म. लिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
10- प्रेम माधुरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
11- प्रेम पुलवारी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
12- प्रेम योगिनी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
13- पन्त ग्रन्थावली	सुमित्रा नन्दन पन्त
14- ब्रज माधुरी सार	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
15- भारतेन्दु ग्रन्थावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
16- रश्मि रथी	रामधारी सिंह दिनकर
17- विजय प्रेम पचासा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
18- विनय प्रेम पचासा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
19- श्री जुगल पद वन्दन	कृष्णा माँ
20- शंकर सर्वस्व	हरि शंकर शर्मा

आलोचनात्मक ग्रन्थ
=====

- | | | |
|---|---------------------|--|
| 1- अकविता और कला | श्याम परमार | कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
1968 |
| 2- आधुनिक कवि | पन्त | हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग सं० 2003 वि० |
| 3- आधुनिक कवि | रामकुमार वर्मा | हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग सं० 2013 वि० |
| 4- आधुनिक कवि | नरेन्द्र शर्मा | हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग सं० 1967 द्वितीय
संस्करण |
| 5- आधुनिक कवि | महादेवी वर्मा | हिन्दी साहित्य सम्मेलन
सं० 2012 वि० |
| 6- आधुनिक कवि | हरिवंश राय
बच्चन | हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग, प्रथम संस्करण |
| 7- आधुनिक साहित्य | नंद दुलारे वाजपेई | भारती भंडार, इलाहा-
बाद, सं० 2022 वि, |
| 8- आधुनिक हिन्दी साहित्य का० नगेन्द्र
की प्रमुख प्रवृत्तियाँ | | नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली - 1961 |
| 9- आधुनिक हिन्दी साहित्य अंग्रेज | | राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली |
| 10- आधुनिक हिन्दी साहित्य रामगोपाल सिंह
बोहान | | विनोद पुस्तक मंदिर
आगरा 1965 |
| 11- आधुनिक हिन्दी साहित्य का० राजेन्द्र प्रसाद
मिश्र | | ग्रन्थम प्रकाशन
कानपुर 1966 |

- 12- आधुनिक कविता में उर्दू उर्दू अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर 1968
मनोविज्ञान
- 13- कला विवेक कुमार विमल भारती भवन, पटना 1968
- 14- कला सृजन प्रक्रिया डा० शिवकरप सिंह घसुमती, इलाहाबाद 1969
- 15- कविता के नये प्रतिमान डा० नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
1968
- 16- कविता और कविता इन्द्र नाथ मदान राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1967
- 17- काव्य शास्त्र डा० भगीरथ मिश्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
सं० 2013 वि०
- 18- काव्य विम्वर डा० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
1967
- 19- काव्य में अभिव्यक्तावाद लक्ष्मी नारायण सुधीश - जनवाणी प्रकाशन,
कलकत्ता, सं० 2007 वि०
- 20- नई कविता के नये धरातल हरिधर शर्मा पद्म प्रकाशन, जयपुर 1969
- 21- नई कविता के प्रतिमान लक्ष्मी कान्त भारती प्रेम, इलाहाबाद 2014 वि०
- 22- नई कविता और मूल्यकर्म-सुरेश चन्द्र सहल-आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
1965
- 23- प्रतीकवाद पद्मा अग्रवाल मनोविज्ञान प्रकाशन, वाराणसी
1963
- 24- प्रतीक शास्त्र परिपूर्णानन्द हिन्दी समिति, सूक्ता - विभाग,
उ० प्र० 1964
- 25- भारतीय काव्यशास्त्र की-नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
परम्परा 1964

- 26- रस - सिद्धान्त नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस 1964
- 27- रस मीमांसा डा० रामचन्द्र शुक्ल- काशी नागरी प्रचारिणी सभा - सं० 2006वि०
- 28- हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल जयप्रिय प्रसाद खण्डेलवाल व
- 29- हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ सम्पादक रामेश्वर दयाल, खण्डेलवाल तथा सुरेश चन्द्र - राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली 1966
- 30- हिन्दी साहित्य में जिविविवाद प्रेम नारायण शुक्ल- लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद - 1970
- 31- हिन्दी नवोत्थान रामस्वरूप चतुर्वेदी- भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी 1961
- 32- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास तं० किरण मोहन शर्मा - काशी नागरी प्रचारिणी सभा - काशी
- 33- हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल काशीनागरी प्रचारिणी सभा सं० 2025
- 34- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास रामकुमार वर्मा - रामनारायण देवी माधव इलाहाबाद - 1964
- 35- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास डा० हरद्वीलाल शर्मा - काशी नागरी प्रचारिणी सभा सं० 2027
- 36- त्रिशङ्क अक्षय सरस्वती प्रेस बनारस 11954

मनोविज्ञान के ग्रन्थ

- 1- फ्राइडवाद मोहन जोशी, मीरा जोशी - साथी प्रकाशन, सागर, 1963
- 2- मनोविज्ञान रालर्ट एस० वुडवर्थ जयर ण्डिया पब्लिश हाउस, लखनऊ
जु० उभापति राय पन्देल 1952
- 3- मनोविज्ञान यदुनाथ सिन्हा लक्ष्मी नारायण एण्ड प्रेस, आगरा
1955
- 4- मनोविज्ञान के क्षेत्र राममूर्ति लुम्बा हिन्दी समिति सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, 1969
- 5- मनोविक्षेपण फ्राइड राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
जु० देवेन्द्रकुमार व्यालकार 1958
- 6- मनोविज्ञान की डा० सीताराम जायवाल सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
रूपरेखा
- 7- मनोविज्ञान नारमन एल० मन राजकमल, दिल्ली 1961
जु० आत्माराम शीह
- 8- भेदक मनोविज्ञान अनासतासी शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
जु० डा० सी० डब्ल्यू डेविस 1969
- 9- विकास मनोविज्ञान - एक्विजावेथ बी० हर्लोक शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार
जु० गोवर्धन भट्ट 1967

List of English Books**The books of Psychology -**

1. An outline of Abnormal Psychology - Willium McDougall
Mottion & Co. Ltd. London. 1926
2. An Introduction of Social Psychology - Willium
McDougall, Mottion & Co. Ltd. London 1959
3. An outline of Psychology - Willium McDougall
Methuen & Co. Ltd. London 1949
4. Development of Personality. - C.C. Jung.
Translated by - R.F.C. Hull.
5. Emotions in Man and animal. P.T. Young
John Willy & Sons, New York 1950
6. Ego and Id. Sigmund Freud
Hogarth Pvt. Ltd., London 1953
7. Feelings and Emotions - Alfred Adler
Oxford University Press- 1928
8. Fundamentals of Psychology - Benjamin Cunville
University Tutorial Press, London 1938
9. Freud on Man and Society. M.G. Samr
Popular Prakashan Bombay 1965
10. Instinct in Man - James Drevar
Cambridge University Press 1927
11. Introduction to Psychology - G. Murphy
Harper & Brothers New York 1959
12. Modern Educational Psychology - B.N.Jha
Indian Press Ltd., Allahabad. 1959
13. Modern Psychology and Education - Mary Stuart
Methuen & Co. London 1959
14. Memories, Dreams, Reflections. - C.C.Jung
Kegan Paul, London 1963

- 2 -

15. Personality - A.A. Roach
C.M. Combhel 1925
16. Personality - T.P. Guilford
McGraw Hill New York 1959
17. Personality - R.G. Gordon Kegan Paul London 1926
18. Personality - G. Murphy
Harper and Brothers, New York 1937
19. Principles of Psychology - William James
Henry Holtland and Company, New York 1890
20. Psychology - The Study of Behaviour W. McDougall
Williams and Margerret Co., London 1912
21. Psychology - R.S. Woodworth and D.G. Marquis
Methuen & Co. Ltd., London 1949
22. Psychology - C.W. Valentine
Methuen & Co. Ltd., London 1957
23. Psychological Types - C.G. Jung
Kegan Paul, New York 1946
24. Principles of Psychology - Arthur Lynch
G. Bell and Sons Ltd., London 1923
25. Psychoanalysis - C.G. Jung
Harper & Row, New York 1961
26. Psychological Basis of education - E.A. Peel
Oliver and Void, London 1967
27. Psychology of Thinking - W. Edgar Vinache
Mc Graw Hill, New York 1952
28. The Science of Emotions - Bhagwan Das
Adyar Library Adyar- 1924
29. The Psychology of Imagination - J.P. Sartre
Rider & Co., London 1960